सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग

121वीं रिपोर्ट

न्यायिक नियुक्तियों के लिए एक नया निकाय

जुलाई, 1987

अर्ध शा० पत्र सं० एफ 2(6)/85-वि० आ०

भारत सरकार,

शास्त्री भवन,

नई दिल्ली।

न्या० श्री डी० ए० देसाई

अध्यक्ष

31 जुलाई, 1987

श्री पी० शिवशंकर,

विधि और न्याय मंत्री,

भारत सरकार,

शास्त्री भवन,

नई दिल्ली।

प्रिय शिवशंकर,

यह रिपोर्ट हाल ही में प्रस्तुत की गई रिपोर्ट के तुरन्त पश्चात् ही पेश की जा रही है। मुझे भारत के विधि आयोग की 121वीं रिपोर्ट पेश करते हुए प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है जिसमें वरिष्ठ न्यायपालिका में नियुक्ति के विषय में शक्ति और परामर्श की परिधि के प्रश्न पर विचार किया गया है। अब चूंकि आप इस बात से अवगत हैं कि न्यायिक सुधारों के बारे में सांगोपांग सिफारिश करने का कार्य वर्तमान विधि आयोग को सौंपा गया है इसलिए आप यह पाएंगे कि जो रिपोर्टें प्रस्तुत की जा रही हैं वे परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। इस श्रृंखला में इस रिपोर्ट से तुरन्त पूर्ववर्ती रिपोर्ट में न्यायपालिका में जनशक्ति आयोजना की रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी।

प्रस्तुत रिपोर्ट के मूल्यांकन में, आपकी सहायतार्थ, कतिपय पूर्ववर्ती रिपोर्टों का स्मरण कराते हुए मैं यह उल्लेख करना चाहूंगा कि इस विधि आयोग ने अपनी प्रथम रिपोर्ट (114वीं रिपोर्ट) में ग्राम स्तर के न्यायालयों की पुनर्रचना की सिफारिश की है, और तत्पश्चात् एक भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना की सिफारिश (116वीं रिपोर्ट) की थी और तत्पश्चात् अधीनस्थ न्यायिक सेवा की पुनर्रचना से सम्बन्धित (118वीं रिपोर्ट) प्रस्तुत की थी। इसके बाद विधि आयोग ने अपनी दिशा में कुछ परिवर्तन किए और आधुनिक न्यायालय प्रबन्ध, डाकेट प्रबन्ध तथा सामाजिक एवं आर्थिक न्याय प्रबंध में न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए एक अकादमी की संरचना के बारे में (117वीं रिपोर्ट) सिफारिश की थी।

इन रिपोर्टों में यह उपधारणा की गई है कि न्यायपालिका में काम करने वाले व्यक्तियों की ओर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। उनके चयन और नियुक्ति को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। आप इस बात से अवगत होंगे कि अतीत में सभी स्तरों पर रिक्तियां भरने में विलंब हुआ है। इसके अतिरिक्त न्यायिक सेवा के विस्तार के बारे में भी विधि आयोग ने सिफारिशें की हैं ताकि यह न्यायिक सेवा समाज के पददलित, सुविधारहित और कमजोर वर्गों को सहज सुलभ हो सके। हमारा अतिरिक्त उद्देश्य जो सामने है वह न्याय को लोगों के घर-द्वार पर ले जाना है जिससे यह न्याय-पद्धति निहित स्वार्थों के पंजे से मुक्त कराई जा सके और कोई भी व्यक्ति सरलता से, कम खर्च में और युक्तियुक्त समय के भीतर न्याय प्राप्त कर सके।

अत: विधि आयोग ने विभिन्न स्तरों पर न्यायाधीशों की भर्ती करने की वर्तमान स्कीम की समीक्षा की है और एक ऐसा निकाय बनाने के बारे में विचार किया है जो इस सर्वथा कठिन कार्य में शीघ्रता से सहायक हो सके। प्रस्तुत रिपोर्ट वरिष्ठ न्यायपालिका में नियुक्तियों के विषय में शक्ति और परामर्श की परिधि के प्रश्न के बारे में है।

यह पत्र समाप्त करने से पूर्व, मैं विधि आयोग के कार्यकरण में हुए किंचित सुधार के प्रति निर्देश करना चाहूंगा जो आयोग के कुछ पदों के लिए मंजूरी देकर किया गया है ; इन पदधारियों ने इस रिपोर्ट के विषय में व्यापक अनुसंधान के द्वारा सहायता की है । वस्तुतः श्रीमती नीरु चड्ढा, एल० एल० एम० ने सभी पहलुओं पर अन्वेषण किया है । श्रीमती चड्ढा ने, जिन्हें इस विषय से सम्बन्धित सारी सामग्री एकत्रित करने तथा एक और अनन्तिम ढांचा तैयार करने का कार्य सौंपा गया था, एक बड़ा ही प्रशंसनीय कार्य किया है जिसे मैं अभिस्वीकार करता हूं । श्रीमती चड्ढा ने अध्यक्ष तथा सदस्यों के साथ विचार-विमर्श में सहर्ष भाग लिया जिसके पश्चात् ही इस रिपोर्ट को अन्तिम रूप दिया जा सका । आयोग की ओर से, मैं उनके द्वारा की गई इस पर्याप्त सहायता को अभिस्वीकार करना चाहूंगा ।

सादर

आपका

ह०

(डी० ए० देसाई)

संलग्न : रिपोर्ट

विषय सूची

			पृष्ठ
अध्याय I	—	प्रस्तावना	1
अध्याय II	—	भारत में वरिष्ठ न्यायपालिका के न्यायाधीशों की नियुक्ति से सम्बन्धित पद्धति का ऐतिहासिक विकास	9
अध्याय III	—	इस पद्धति का परिणाम और वर्तमान स्थिति	16
अध्याय IV	—	परिवर्तन के लिए आवश्यकता और न्यायौचित्य	27
अध्याय V	—	विश्व पर एक दृष्टि	33
अध्याय VI	—	समाधान की खोज	41
अध्याय VII	—	एक नया माडल	49
अध्याय VIII	—	तकनीकी प्रगति और इसका उपयोग	56
अध्याय IX	—	उपसंहार	59
उपाबन्ध I	—	विधि आयोग के सभापति की ओर से सभी उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों को भेजा गया पत्र	60
उपाबन्ध II	—	वर्ष 1981 से लेकर 1985 के दौरान उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या दर्शाने वाला विवरण	63
उपाबन्ध III	—	उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की रिक्तियों से सम्बन्धित वर्षवार जानकारी	64
उपाबन्ध IV	—	उच्चतम न्यायालय में वर्ष 1962 से लेकर वर्ष 1986 के दौरान लम्बित मामलों की संख्या; नष्ट हुए मानव-दिवस, निपटाए गए मामलों आदि की संख्या को दर्शाने वाला विवरण	78
उपाबन्ध V	—	उच्च न्यायालयों में वर्ष 1981–1985 के दौरान लम्बित मामलों की संख्या, नष्ट हुए मानव-दिवस, निपटाए गए मामलों की संख्या आदि को दर्शाने वाला विवरण	79
उपाबन्ध VI	—	विभिन्न उच्च न्यायालयों से प्राप्त उत्तरों का विवरण	81

अध्याय 1

प्रस्तावना

1.1 संदर्भ के अनुसार किंचित परिवर्तन के साथ, जूलियस स्टोन महोदय के इस कथन का स्मरण किया जा सकता है कि "मानवता की किसी एक ही पीढ़ी के लिए विधिक न्याय पद्धति की ऐसी पुनर्रचना करने के कार्य की बाध्यता नहीं है जिससे कि यह पद्धति प्रभावी, संरलतः सुलभ, अव्यवसायीकृत और कम खर्चीली बन जाए ; किन्तु कोई भी पीढ़ी ऐसा करने से विरत होने के लिए मुक्त भी नहीं है।" वर्तमान युग की न्याय पद्धति और इसमें कार्य करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध विभिन्न स्थानों और अनेक मंचों से भरपूर आलोचना की गई है जो कि प्रायः कटु ही रही है। इस पद्धति का यह कहकर प्रायः वर्णन किया गया है कि यह औपनिवेशिक है, हमारी आवश्यकताओं के अनुपयुक्त और हमारी संस्कृति के प्रतिकूल है, इसका स्रोत विदेशी है और यह विदेशी शासकों द्वारा अपने साम्राज्यिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हम पर लादी गई थी। इस पद्धति में कार्य करने वाले व्यक्तियों को रूढ़िवादी, उच्चवर्गीय, यथास्थितिवादी, उदाहरणप्रिय, एकांतवादी कहा गया है, जो भारतीय गणतन्त्र की अन्यायग्रस्त, विशाल, परिश्रमी और निर्धन जनता से बहुत दूर है। विधि आयोग ने इस पद्धति की पुनर्रचना करने के लिए कुछ रिपोर्टें प्रस्तुत कीं। इस पद्धति के सुधार के बारे में कोई भी प्रस्ताव तब तक अपूर्ण रहेगा जब तक कि यह प्रस्ताव इस पद्धति में कार्यरत मानवशक्ति पर ध्यान नहीं देता है। यही बात इस रिपोर्ट का आधारभूत कारण है। कोई भी सामाजिक संस्था मान-रहित और मान-निरपेक्ष नहीं है। प्रत्येक पद्धति जो मानव व्यवहार को विनियमित करने के लिए विरचित की जाती है उसका उद्देश्य मानवों की स्थिति को सुधारना होना चाहिए। किन्तु हर प्रकार की तकनीकी उन्नति के बावजूद भी प्रत्येक ऐसी पद्धति में मनुष्यमात्र ही तो कार्य करते हैं। अतः इस पद्धति में कार्य करने वाले व्यक्तियों की क्वालिटी, क्षमता, दक्षता, निष्ठा, चरित्र और उनके गुणागुण की परख ही इस पद्धति की शक्ति, दुर्बलता, उपयोगिता, अनुकूलनशीलता और परिवर्तन के प्रति इनके लचीलेपन को उजागर करेंगी। संक्षेप में, किसी पद्धति में कार्य करने वाले व्यक्ति ही उस पद्धति की सफलता या विफलता की गारंटी होते हैं। तकनीकी दृष्टि से अत्यन्त सुदृढ़ और प्रभावी पद्धति भी, उसमें संलग्न मानवशक्ति के योगदान के कारण असफल हो सकती है। अतः इस जड़वत, घिसी-पिटी और आज की स्थिति के लिए पूर्णतः असंगत न्यायदान पद्धति को पुनरुज्जीवित करने और इसका कायाकल्प करने के लिए उपायों और साधनों का सुझाव देते हुए, विधि आयोग वर्तमान रिपोर्ट को इस पुनर्निर्मित पद्धति के प्रभावी कार्यकरण के लिए मानवशक्ति की आयोजना के लिए समर्पित करता है।

1.2 न्यायिक सुधार के लिए किसी भी सांगोपांग कार्यक्रम के अन्तर्गत निःसन्देह, न्यायदान पद्धति में कार्य करने वाले व्यक्तियों के चयन की पद्धति की आलोचनात्मक समीक्षा भी आती है। किसी भी पद्धति के प्रभावी कार्यकरण के लिए उसमें मानवशक्ति का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। अन्य बातों के साथ-साथ, मानव संसाधन किसी भी संगठन में एक नाजुक तत्व होता है। मानव संसाधन की गुणवत्ता और इसकी मात्रा किसी भी संगठन की प्रभावशीलता और उसकी दक्षता के स्तर को पर्याप्ततः प्रभावित करती हैं। मानव संसाधनों की नाजुक स्थिति, प्रायः दोहराए जाने वाली इस कहावत में प्रतिध्वनित होती कि कोई भी संगठन (जिसमें इसका ढांचा और इसकी पद्धतियां सम्मिलित हैं) उतना ही अच्छा हो सकता है जितने अच्छे वे लोग हैं जो इस संगठन को चलाते हैं। एक ओर तो किसी संगठन में कार्य करने वाले व्यक्तियों के ज्ञान की प्रकृति और गहराई, उनका कौशल और उनकी नैतिकता तथा दूसरी ओर, उस संगठन के उद्देश्यों के मूल्यांकन में उनकी विशुद्धता और उनके प्रति उनकी प्रतिबद्धता, ऐसे संगठनों की आन्तरिक दक्षता तथा बाह्य प्रभावशीलता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं[1]।

1.3 भारतीय न्याय पद्धति का स्वरूप पिरामिडीय होने के कारण यह पद्धति एक समेकित पद्धति है— जैसा कि इसे अमरीकी और आस्ट्रेलियायी पद्धतियों की तुलना में समझा जा सकता है। निःसंदेह हमारी न्याय पद्धति की संरचना उर्ध्वाकार है जिसके शिखर पर भारत का उच्चतम न्यायालय है; इनके अन्तवर्ती स्तरों में निम्नतर स्तर पर अधीनस्थ न्यायपालिका है, मध्य-स्तर पर जिला न्यायालय हैं और राज्य स्तर पर उच्च न्यायालय हैं। हमारे संविधान में न्यायिक सेवा के विभिन्न स्तरों पर मानवशक्ति आयोजन के लिए और

---

1. जी०एस०एस०राव, विधि आयोग को प्रस्तुत किया गया एक टिप्पण.

व्यक्तियों के चयन तथा नियुक्ति के लिए पृथक्-पृथक् उपबंध हैं। भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति भारत के राष्ट्रपति में निहित है, जिसका प्रयोग उच्चतम न्यायालय के और राज्यों के उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करने के पश्चात्, जिनसे राष्ट्रपति इस प्रयोजन के लिए परामर्श करना आवश्यक समझे, किया जाता है[1]। इसी प्रकार, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को और उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को नियुक्त करने की शक्ति भी राष्ट्रपति में निहित है, जिसका प्रयोग भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, उस राज्य के राज्यपाल और उसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करने के पश्चात् किया जाता है[2]। जिला न्यायाधीश के पद पर किसी व्यक्ति को नियुक्त करने या प्रोन्नत करने की शक्ति उस राज्य के राज्यपाल में निहित है जिसका प्रयोग ऐसे राज्य के संबंध में अधिकारिता का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय के परामर्श करके किया जाता है[3]। इसी प्रकार, जिला न्यायाधीशों से भिन्न व्यक्तियों को किसी राज्य की न्यायिक सेवा में भर्ती और नियुक्त करने की शक्ति उसका राज्य के राज्यपाल में निहित है जो राज्य लोक सेवा आयोग से और ऐसे राज्य के संबंध में अधिकारिता का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय से परामर्श करने के पश्चात्, उनके द्वारा इस निमित्त बनाए गए नियमों के अनुसार किया जाता है[4]।

1.4 गत चार दशकों से वरिष्ठ न्यायपालिका में नियुक्ति, संविधान के अनुच्छेद 124 और अनुच्छेद 217 में विहित प्रक्रिया के अनुसार की जाती रही है। इस वरिष्ठ न्यायपालिका में कार्य करने के लिए चुने गए व्यक्तियों और चयन की रीति तथा प्रक्रिया के बारे में बढ़ता हुआ असंतोष अब बहुत मुखर हो रहा है यह असंतोष इस बात से उत्पन्न होता है कि वरिष्ठ न्यायपालिका के सदस्यों का आराध्य स्वरूप होता है, किन्तु वस्तुतः उनका उपलब्ध स्वरूप क्या है। इस कटु आलोचना की शुद्धता और युक्तियुक्तता का मूल्यांकन करने के लिए सर्वप्रथम हमारे लिए यह अवधारणा करना अत्यंत आवश्यक है कि वरिष्ठ न्याय-पालिका से, व्यक्तिगत रूप में और संस्थागत रूप में, क्या अपेक्षित है।

1.5 अप्रैल, 1973 में, जब से भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में ज्येष्ठता की पंक्ति में एक चौथे न्यायमूर्ति को प्रोन्नत करके उच्चतम न्यायालय के तीन वरिष्ठ न्यायमूर्तियों को अतिष्ठित किया गया है तब से संपूर्ण देश में यह गंभीर वादविवाद छिड़ा हुआ है कि वरिष्ठ न्यायपालिका के सदस्यों का चयन करने के विषय में निर्णायक शक्ति किसे होनी चाहिए तथा यह भी कि ऐसे व्यक्तियों का चयन करने के लिए क्या मानदंड या पैमाना होना चाहिए। **महामहिम केशवानन्द भारती श्रीपदगल्वारू** बनाम **केरल राज्य और अन्य**[5] के मामले में, जो मूल अधिकारों के मामले के नाम से प्रसिद्ध है, 24 अप्रैल, 1973 को पूर्ण न्यायालय के विनिश्चय के पश्चात् 25 अप्रैल, 1973 को भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति श्री एस०एम० सीकरी सेवानिवृत्त हो गए। उत्तराधिकार की पंक्ति में अगला नाम न्या० जे० एम० शैलत का तथा उनके पश्चात् क्रमशः न्या० के० एस० हेगड़े और न्या०ए०एन० ग्रोवर का था। इन तीनों को अतिष्ठित करते हुए न्या०ए०एन० रे को भारत का मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त किया गया था। तत्काल ही एक देशव्यापी वादविवाद, संभवतः पहली बार, इस मुद्दे पर छिड़ गया कि भारत का मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त करने के क्या मानदंड होने चाहिएं और इस विषय पर अंतिम निर्णय किसका होना चाहिए। स्वभाविकतः यह वादविवाद बड़ा व्यापक बन गया और इसके अन्तर्गत यह प्रश्न भी आ गया कि वरिष्ठ न्यायपालिका में काम करने के लिए व्यक्तियों का चयन करने के लिए क्या मानदण्ड और क्या प्रभावी विचारणाएं होनी चाहिएं। जिन्होंने न्याय-मूर्तियों के अतिष्ठित किए जाने की निन्दा की उन्हें इसमें न्यायपालिका की स्वतंत्रता को भारी खतरा दिखाई पड़ा। उनके अनुसार एक लिखित संविधान और उसमें अन्तर्निहित "बिल आफ राइट्स" वाले एक परिसंघीय राजतंत्र, में न्यायपालिका की भूमिका एक जागरूक प्रहरी की होती है और इसे इसकी स्वतंत्रता के क्षरण के विरुद्ध विशेषकर कार्यपालिका के विरुद्ध, सुरक्षित बनाया जाना चाहिए। अंतिम विश्लेषण के रूप में, उनके अनुसार, नागरिकों के अधिकारों की अंतिम गारंटी संविधान नहीं अपितु उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों का व्यक्तित्व और उनकी बौद्धिक निष्ठा है[6]।

---

1. भारत का संविधान, अनुच्छेद 124.
2. तथैव, अनुच्छेद 217.
3. तथैव, अनुच्छेद 233.
4. तथैव, अनुच्छेद 234.
5. (1973) 4 एससीसीसी 225.
6. एन०ए० पालकीवाला, "ए जूडिशियरी मेड्ट् मेजर" पृ० 55 (1973).

1.6 दूसरी और अतिष्ठित किए जाने के समर्थकों ने विधि आयोग की उस रिपोर्ट का अवलंब लिया जिसमें आयोग ने तब तक अनुसरित इस प्रणाली पर ध्यान देने के पश्चात् कि वरिष्ठतम अवर न्यायाधीश को ही सदैव मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में प्रोन्नत किया जाना चाहिए और यह कि ऐसी प्रोन्नति एक सामान्य सी बात हो गई है, यह विनिर्दिष्ट किया कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति कि अर्हताएं क्या होनी चाहिएं, अर्थात् यह कि न केवल ऐसा व्यक्ति अनुभवी न्यायाधीश ही होना चाहिए अपितु उसे ऐसा सक्षम प्रशासक भी होना चाहिए जो ऐसी जटिल समस्याओं से निपटने में समर्थ हो जो समय-समय पर प्रकट होंगी; उसे व्यक्तियों और व्यक्तित्वों का चतुर चितेरा होना चाहिए और सबसे अधिक उसे स्वतंत्रता का प्रबल समर्थक तथा ऐसे व्यक्तित्व का धनी होना चाहिए जो अवसर पड़ने पर न्यायपालिका की स्वतंत्रता का जागरूक प्रहरी बन सके[1]। विधि आयोग ने अन्त में यह कहा कि "एक ऐसी परंपरा स्थापित की जानी चाहिएं" कि मुख्य न्यायमूर्ति के पद पर की जाने वाली नियुक्ति विशेष विचारणाओं पर आधारित होनी चाहिए और यह पद साधारण रूप से स्वतः ही वरिष्ठतम् अवर न्यायाधीश को नहीं दिया जाना चाहिए"। विधि आयोग ने यह भी अनुशंसा की कि जब ऐसी परंपरा स्थापित हो जाती है तो "इस पद की नियुक्ति के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों का कर्तव्य इस उच्चतम पद के लिए योग्यतम व्यक्ति को चुनना होगा, और यदि आवश्यक हो तो न्यायालय से बाहर के व्यक्तियों में से भी किसी को चुना जा सकेगा"[2]।

1.7 इस बात का भी तुरन्त उल्लेख किया जा सकता है कि विधि आयोग ने तत्समय विद्यमान उच्च न्यायपालिका में कार्य करने के लिए अधिकारियों का चयन करने की शक्ति की संरचना में किसी प्रकार के किसी परिवर्तन की सिफारिश नहीं की थी और उच्च न्यायपालिका की संरचना संविधान में आज भी वैसी की वैसी ही है।

1.8 एक प्रश्न जिस पर अतिष्ठित किए जाने के समर्थकों और विरोधियों के बीच अनम्य मतभेद था, वह यह था कि क्या किसी न्यायाधीश का अपना कोई दर्शन होना चाहिए अथवा नहीं और क्या उसका दर्शन इस बात का अवधारण करने के लिए एक सुसंगत तथ्य है कि उसे भारत के उच्चतम न्यायालय में नियुक्त अथवा प्रोन्नत किया जाना चाहिए अथवा नहीं? श्री एस० मोहन कुमारमंगलम् ने स्पष्ट शब्दों में इस बात पर बल दिया था कि वरिष्ठ न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित है और राष्ट्रपति सरकार की सलाह से कार्य करता है और इस प्रकार सरकार के लिए, न्यायालय में नियुक्ति हेतु प्रस्थापित व्यक्ति के 'दर्शन' अथवा 'जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण' अथवा 'सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति उसकी धारणा' पर ध्यान देना सर्वथा न्यायोचित्त है[3]।

1.9 कुछ लोगों का यह भी विचार है कि भारतीय संविधान का अपना एक दर्शन है और उसमें मूल्यों का एक पैमाना भी है।

"भारतीय संविधान सर्वप्रथम एक सामाजिक दस्तावेज हैं। इसके अधिकतर उपबन्धों का या तो सीधा उद्देश्य सामाजिक क्रांति के लक्ष्यों को प्राप्त करना है या इस क्रांति के लिए आवश्यक परिस्थितियां उत्पन्न करके उसे प्रोत्साहित करने का प्रयत्न करना है"[4]। भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने यह कहा था कि: "संविधान सभा का सबसे पहला कार्य एक नए संविधान के द्वारा भारत को स्वतंत्र बनाना है। भूखे लोगों को भोजन देना है और निर्वस्त्र जनता का तन ढांकना है तथा प्रत्येक भारतवासी को अपनी क्षमता के अनुसार ही उसे अपना विकास करने का अधिकतम अवसर प्रदान करना है[5]।"

1.10 इस असंदिग्ध साक्ष्य को देखते हुए क्या कोई यह कहने का साहस कर सकता है कि "हमारे संविधान का कोई निश्चित दर्शन या कोई निश्चित मूल्य नहीं है, क्योंकि यह सब कुछ ऐसे एकदलीय राज्य में ही प्राप्त किया जा सकता है जो किसी प्रकार के विरोध को सहन नहीं करेगा[6]"। प्रश्न यह है कि क्या हमारा

1. भारत का विधि आयोग, 14वीं रिपोर्ट, पृ० 391.
2. तथैव, पृ० 401.
3. एस०मोहन कुमार मंगलम, "जुडिशियल अपायन्टमेंट्स—एन एनेलाइसिस आफ दि रीसेन्ट कंट्रोवर्सी ओवर दि अपायन्टमेंट आफ चीफ जस्टिस आफ इंडिया" 72 (1973).
4. जी० आस्टिन—"दि इंडियन कान्सटिट्यूशन—कार्नर स्टोन आफ ए नेशन, पृ० 50 (1966)।
5. संविधान सभा वाद-विवाद, जिल्द 2, पृ० 316.
6. एच० एन० सीरवाई, "कान्स्टीट्यूशनल ला आफ इंडिया", जिल्द 2, पृ० 2492, (तृतीय संस्करण) 1984.

संविधान मूल्यरहित या मूल्य-निरपेक्ष है। अथवा क्या हमारा संविधान सत्ता के तीनों केन्द्रों अर्थात् विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका, से अस्पृश्यता का अन्त (अनुच्छेद 17), निधनता का उन्मूलन (अनुच्छेद 38), असमानता दूर करना [अनुच्छेद 38 (2)], निरक्षरता और अज्ञान के अभिशाप की समाप्ति, व्यक्ति का व्यक्ति के द्वारा किए जाने वाले शोषण का उत्सादन (अनुच्छेद 38 और 39), सामन्तशाही आधिपत्य का नाश (अनुच्छेद 31क), आर्थिक एवं सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्धता (अनुच्छेद 41, 42, 43 और 46), विधि व्यवस्था को न्यायोन्मुख बनाने के लिए इसमें आमूल-चूल परिवर्तन (अनुच्छेद 39क) के और समतावादी समाज की स्थापना के लक्ष्य प्राप्त करने के अपेक्षा नहीं करता है ?

क्या ये सब मूल्यों के पैमाने नहीं हैं ? क्या इन्हें संविधान के 'सामाजिक दर्शन' नामक प्रजातिगत अभिव्यक्ति के संदर्भ में नहीं समझा जा सकता ? संविधान द्वारा राज्य को दिए गए इन निदेशक तत्वों को ध्यान में रखते हुए क्या यह कहा जा सकता है कि हमारे संविधान का कोई निश्चित दर्शन या इसमें कोई निश्चित मूल्य नहीं है ? तथापि, जिन लोगों ने इन मूल्यों का पोषण किया है उन्हें प्रतिबद्ध न्यायाधीश कहकर उनकी भर्त्सना की गई है ।

"न्यायपालिका" पद से पूर्व उपसर्ग के रूप में 'प्रतिबद्ध' विश्लेषण ने एक कड़ुवा विवाद उत्पन्न कर दिया है। प्रश्न यह उठता है कि क्या कोई ऐसा मानव हो सकता है जिसका अपना कोई दर्शन न हो। 'यथा-स्थितिवादी' भी यह दावा कर सकता है कि उसका भी एक दर्शन है अर्थात् यह कि वह तटस्थ रहेगा या अधिक से अधिक वह भूतकाल की ओर ही उन्मुख होगा तथा भविष्य की अनदेखी करेगा या समाज में होने वाले परिवर्तनों के प्रति अपनी आखें बन्द कर लेगा ।

1.11 "हममें से प्रत्येक व्यक्ति में एक ऐसी प्रवृत्ति होती है, चाहे इसे हम दर्शन कहना पसन्द करें या न करें, जो हमारे चिंतन और हमारे कार्य को एक दिशा और सामंजस्य प्रदान करती है। न्यायाधीश भी इस धारा से अपने आपको अन्य प्राणियों की तरह अलग नहीं कर सकते। संपूर्ण जीवनपर्यन्त उन पर ऐसी शक्तियां प्रभाव डालती रहती हैं जिन्हें वे न तो पहचानते हैं और न उन्हें कोई नाम ही दे सकते हैं—अर्थात् वंशानुगत प्रवृत्तियां, पारंपरिक विश्वास, उपार्जित धारणाएं ; और इसकी परिणति जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण, सामाजिक आवश्यकताओं की एक संकल्पना, जैम्स महोदय के शब्दों में "ब्रह्मांड में एक पूर्ण दबाव और प्रभाव की भावना" में होती है, जो इस बात का अवधारण करेगी कि जब व्यक्ति के विवेक में युक्तियुक्त संतुलन हो जाएगा तब आपका निर्णय क्या होगा [1] ।

1.12 यह विवाद स्वतः ही समाप्त हो गया। इस वादविवाद से ऐसा कोई सुझाव सामने नहीं आया जो भविष्य में सहायक हो सके। अतिष्ठित किए जाने के समर्थकों ने विधि आयोग की रिपोर्ट में दी गई सिफारिशों का अवलंब लिया[2]। किन्तु विरोधियों ने यहां तक कहना प्रारंभ कर दिया कि सरकार द्वारा विधि आयोग की रिपोर्ट का अवलंब "लेना जनता से किए गए छल द्वारा जनता से किए गए अन्याय का शमन करने की कोटि में आता है" क्योंकि यह रिपोर्ट सरकार के पक्ष को पूर्णतः ध्वस्त करती है[3]। यह रिपोर्ट इस दृष्टि से बड़ा विलक्षण विवाद थी कि इससे कोई स्थायी परिणाम नहीं निकला ।

1.13 ऐसी ही स्थिति जनवरी, 1977 में भी उठ खड़ी हुई थी। तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति की सेवा निवृत्ति के पश्चात् उक्त पद के उत्तराधिकारी न्यायाधीश को भी पीछे छोड़ दिया गया। उसे भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के पद पर नियुक्त नहीं किया गया था किन्तु उसके पश्चात्वर्ती न्यायमूर्ति को उक्त पद पर नियुक्त कर दिया गया था। सन् 1973 के पुराने विवाद को पुनरुज्जीवित करते हुए आरोप, प्रत्यारोप और हेतुक आदि के लांछन लगाए गए। इस विवाद का मुख्य स्वर था "कार्यपालिका से न्यायपालिका की स्वतंत्रता को खतरा है"। किन्तु अन्त में यह विवाद भी निष्फलता पूर्वक शांत हो गया।

1.14 भारत के प्रथम मुख्य न्यायमूर्ति के देहांत के पश्चात् यह धारणा बनी थी कि अगले उत्तरवर्ती न्यायाधीश को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में प्रोन्नत किया जाएगा। उस समय ऐसी कोई परंपरा नहीं थी; किन्तु यह परंपरा बनने लगी थी। ऐसा लग रहा था कि भारत सरकार उसके पक्ष में नहीं है और उसकी यह राय थी कि उच्चतम न्यायालय के एक दूसरे न्यायाधीश को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के पद पर

---

1. बैन्जमिन कारडोजो, "दि नेचर आफ जुडिशियल प्रोसेस", पृ० 11-12.
2. उपरोक्त पाद टिप्पण सं० 8, पृ० 39-40
3. उपरोक्त पाद टिप्पण सं० 7, पृ० 46.

प्रोन्नत किया जाना चाहिए। ऐसी स्थिति होने पर केवल अतिष्ठित होने वाले न्यायाधीश ने ही नहीं अपितु उच्चतम न्यायालय की न्यायपीठ को सुशोभित करने वाले सभी अन्य न्यायाधीशों ने एक साथ त्यागपत्र देने की धमकी दे डाली। किन्तु ऐसी स्थिति से तब ही बचा जा सका जबकि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के पश्चातवर्ती न्यायाधीश को ही भारत का मुख्य न्यायमूर्ति पदोन्नत कर दिया गया [1]। किन्तु सन् 1973 में इसी प्रकार अतिष्ठित किए जाने के समय केवल अतिष्ठित न्यायाधीशों ने ही त्यागपत्र दिया था किन्तु उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों ने अतिष्ठित होना स्वीकार कर लिया था। इसी प्रकार सन् 1977 में केवल अतिष्ठित न्यायाधीश ने ही त्यागपत्र दिया था। यदि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति करने में वरिष्ठतम न्यायमूर्ति का अतिष्ठित होना न्यायिक स्वतंत्रता का अतिक्रमण है तो न्यायपालिका की स्वतंत्रता को खतरा स्वयं न्यायालय से ही उद्भूत होता है। अतिष्ठित किए जाने की समस्या केवल अतिष्ठित न्यायाधीशों तक ही सीमित नहीं रहनी चाहिए, बल्कि जैसा कि अतीत में हुआ है यह समस्या सेवा में बने रहने वाले अन्य न्यायमूर्तियों की भी होनी चाहिए चूंकि ऐसा नहीं हुआ इसलिए यह कहा गया था कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता को खतरा स्वयं उच्चतम न्यायालय से है[2]।

1.15 सितंबर, 1977 में दो न्यायाधीशों को—एक मुम्बई उच्च न्यायालय से और दूसरा गुजरात उच्च न्यायालय से, उच्चतम न्यायालय में प्रोन्नत किया गया था। दोनों में से पश्चात्वर्ती न्यायाधीश की प्रोन्नति के कारण एक संविवाद का तूफान खड़ा हो गया; एक शिकायत यह थी कि गुजरात उच्च न्यायालय से प्रोन्नत किया गया न्यायाधीश उस उच्च न्यायालय का ज्येष्ठतम न्यायाधीश नहीं था और यह कि किसी उच्च न्यायालय के ज्येष्ठतम न्यायमूर्तियों की उस समय अवहेलना नहीं की जानी चाहिए जबकि प्रोन्नति से संबंधित उनके दावे भी उतने ही बलशाली हों जितना कि उस न्यायाधीश का जिसको प्रोन्नत किया गया था। उच्चतम न्यायालय की बार एसोशिएशन ने एक संकल्प पारित करके उक्त संविवाद का समर्थन 29-5 मतों के बहुमत से किया और गुजरात उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की उच्चतम न्यायालय में प्रोन्नति का इस आधार पर अनुमोदन नहीं किया कि ज्येष्ठ न्यायाधीशों के दावों को सम्यक महत्व नहीं दिया गया था। जैसा कि पहले भी हुआ था, इस संविवाद से भी किसी वैचारिक मतभेद का पता नहीं लगा; न तो इससे कोई सार्थक जानकारी ही मिली और न इससे ऐसी दिशा का संकेत ही मिला जिसका अनुसरण करने से भविष्य में ऐसी स्थिति से बचा जा सके। "संविवाद के अन्त में यह पता लगा कि यह एक बहुत ही भौंडा संविवाद था क्योंकि इस संविवाद से न्यायाधीशों की नियुक्ति से संबंधित किसी भी वास्तविक विवाद्यक का हल नहीं निकला अधिकतर लोगों ने यह स्वीकार कर लिया कि ज्येष्ठता का सिद्धांत सदैव ही उत्तम सिद्धांत नहीं होता है। इस बात के बारे में भी कोई वास्तविक स्पष्टीकरण नहीं था कि संविवाद ने ऐसा मार्ग क्यों अपनाया [3]। तथापि, एक लेखक का यह मत था कि चूंकि गुजरात उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश ने, जिसमें मुख्य न्यायमूर्ति भी सम्मिलित हैं, बार एसोशिएशन की असम्मानजनक चालों के बारे में और न्यायाधीशों की बिरादरी के ही एक न्यायाधीश की निष्ठा पर मनमाना प्रहार करके न्यायपालिका की लोक छवि को बगाड़ने के बारे में कोई सार्वजनिक विरोध नहीं किया तो इससे संकेत मिलता है कि गुजरात उच्च न्यायालय में भी गुटबन्दी थी[4]। न्यायपालिका की स्वतंत्रता को खतरे में डालने वाला यह एक दूसरा स्रोत था। उच्च न्यायालय से किसी न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय में प्रोन्नत किए जाने पर ज्येष्ठता और अतिष्ठित होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। यह बात आमतौर पर स्वीकार की जाती है; तथापि गुजरात बार एसोशिएशन ने इसे संविवाद का एक मुद्दा बनाया था।

1.16 जब फरवरी, 1978 में आसीन मुख्य न्यायमूर्ति की पदावधि समाप्त होने वाली थी तब मुम्बई के वकीलों के एक दल ने एक ज्ञापन प्रस्तुत किया था जिसमें उन्होंने पूर्ववर्ती संविवाद में किए गए कथन से बिल्कुल ही उल्टा पक्ष-कथन अपनाया गया। अप्रैल, 1973, जनवरी 1977 और सितंबर, 1977 के पूर्ववर्ती अवसरों पर इन व्यक्तियों में से कुछ व्यक्तियों ने, जिन्होंने 1978 के ज्ञापन पर भी हस्ताक्षर किए थे, मुख्य न्यायमूर्ति के पद पर नियुक्ति करने में या किसी उच्च न्यायालय से भारत के उच्चतम न्यायालय में प्रोन्नति करने में, ज्येष्ठता के सिद्धांत का जोरदार समर्थन किया था। इनमें से कुछ महानुभाव तो उस

1. जे०आर० सेईवाक, "सिंकिंग इंडिया जुडिशियल पिरामिड", पृ० 42 (1986).
2. उपेन्द्र बख्शी, करेज, क्राफ्ट एण्ड कंटेन्शन: दि इंडियन सुप्रीम कोर्ट इन दि एटीज, पृ० 24 (1985).
3. राजीव धवन एण्ड ऐलिस जैकब, "सेलेक्शन एण्ड अपायन्टमेंट आफ सुप्रीम कोर्टजजेज : ए केस स्टडी" पृ० 59 (1978)
4. उपेन्द्र बख्शी, "दि इंडियन सुप्रीम कोर्ट एण्ड पालिटिक्स", पृ० 191 (1980).

प्रथम विधि आयोग के सदस्य भी रह चुके थे जिसने ज्येष्ठता के सिद्धांत के विरुद्ध सिफारिश की थी। फरवरी, 1978 में इन्होंने उत्तराधिकार की पंक्ति में अगले दो न्यायाधीशों को अतिष्ठित किए जाने के लिए जोरदार तर्क दिया था और इस बारे में आग्रह भी किया था। उत्तराधिकार की पंक्ति में अगले दो न्यायाधीशों के विरुद्ध आरोप यह था कि वे व्यक्ति की स्वतंत्रता के समर्थक नहीं थे और यह कि वे "प्रतिबद्ध" न्यायमूर्ति थे; और यह कि ऐसी आंशिक परंपरा की व्यवस्था की गई थी कि ज्येष्ठतम आसीन न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय के उन सभी अन्य आसीन न्यायाधीशों के पश्चात् ही सेवानिवृत्त होगा, जिनमें से अधिकांश न्याया-धीशों की ख्याति अनिन्द्य रही है[1]। हर प्रकार के शब्दचातुर्य के बावजूद भी, ज्ञापन दाताओं की मांग अति-ष्ठित किए जाने के पक्ष में की गई मांग की कोटि में आती थी क्योंकि उनके अनुसार उक्त दोनों न्यायाधीशों में से किसी की भी नियुक्ति राष्ट्रीय असम्मान समझी जा सकती थी। संक्षिप्ततः, विधि आयोग के सदस्यों के रूप में उन्होंने केवल ज्येष्ठता के आधार पर स्वतः प्रोन्नति के विरोध में राय प्रकट की थी। एक पश्चात्-वर्ती संविवाद में, अतिष्ठित किए जाने में, इन्हें न्यायपालिका की स्वतंत्रता को खतरा दिखाई दिया। एक और स्थान पर इसी संस्था के बारे में उन्होंने यह कहा कि यदि मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति में अतिष्ठित जाने का अवलंब नहीं लिया गया तो प्रतिबद्ध न्यायाधीश न्यायपालिका की स्वतंत्रता को नष्ट कर देंगे। इस प्रकार के अन्तरविरोधों की इस खिचड़ी से क्या कोई सिद्धांत प्रकट हो सकता है। और इसी लिए इस प्रकार के संविवादों से किसी नए सिद्धांत का उदय नहीं हुआ तथा स्थिति और अधिक जटिल हो गई है।

1.17 एक लिखित संविधान के अधीन, जिसमें अनतिक्रमणीय मूल अधिकार भी समाविष्ट हैं, संसदीय प्रजातंत्र के सफल कार्यकरण से एक स्वतंत्र न्यायपालिका की पूर्वापेक्षा की जाती है। स्वतंत्र न्यायपालिका से यह अर्थ लगाया जाता है कि न्यायपालिका, किसी भी स्रोत से पड़ने वाले बाह्य प्रभावों से जिनमें राजनैतिक एवं कार्यपालक प्रभाव भी शामिल हैं, स्वतंत्र है। यह कहना कि न्यायपालिका में कार्य करने वाले न्यायाधीशों को किसी भी प्रकार के बाह्य प्रभावों, दबावों और हस्तक्षेपों से पूर्णतः अप्रभावी होना चाहिए, एक बिल्कुल ही स्पष्ट तथ्य है। न्यायिक स्वतंत्रता के समर्थकों ने तो यहां तक कहा है कि यह बात हमारे संविधान का एक मूलभूत तत्व है और न्यायपालिका से संबंधित सांविधानिक अनुच्छेदों में से किसी भी अनुच्छेद के निर्व-चन से इस तथ्य को अनतिक्रमणीय बनाए रखा जाना चाहिए। न्यायपालिका की स्वतंत्रता की इस अस्पष्ट धारणा के प्रति यह एक प्रकार का भावनात्मक लगाव है। राजनैतिक सत्ता से बाहर रहने वाले व्यक्तियों में इस बात ने इस बारे में गंभीर विभ्रम उत्पन्न कर दिया है कि ऐसे लोग न्यायपालिका के संबंध में कार्य-पालिका की प्रत्येक कार्यवाही से न्यायपालिका की स्वतंत्रता को खतरा होने की संभावना देखते हैं। किसी प्रकार के बाहरी प्रभाव से न्यायपालिका को सुरक्षित बनाने के लिए हमारे संविधान के आदि निर्माताओं ने न्यायपालिका के सदस्यों की पदावधि (अनुच्छेद 124), वेतन (द्वितीय अनुसूची), पेंशन और सेवा की शर्तों की गारंटी प्रदान की है। (एक कानून के द्वारा यह गारंटी दी गई है कि न्यायाधीशों की सेवा की शर्तें, उसके पदारूढ़ होने के पश्चात् उन पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले रूप में परिवर्तित नहीं की जाएंगी)। मानो ये उपबंध न्यायपालिका की स्वतंत्रता की गारंटी के लिए पर्याप्त नहीं हैं, बड़े भावातिरेक में यह भी दलील दी गई है कि न्यायपालिका के महत्व को समाप्त करने के लिए कुछ एक अन्य कपटपूर्ण हस्तक्षेप (उपबंध) भी हैं। ऐसा ही एक उपबंध जिसके प्रति बार-बार निर्देश किया जाता है, वह है वरिष्ठ न्यायपालिका में न्यायाधीश नियुक्त करने के लिए राष्ट्रपति में निहित शक्ति अर्थात् भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति (अनुच्छेद 124) और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति (अनुच्छेद 217) तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के स्थानान्तरण (अनुच्छेद 222) की शक्ति। जहां तक अधीनस्थ न्यायपालिका का संबंध है, भारत के उच्चतम न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों के अनेक विनिश्चयों ने अधीनस्थ न्यायपालिका को कार्यपालिका द्वारा न्याय-पालिका के दुर्ग में किसी प्रकार के हस्तक्षेप से सुरक्षित बना दिया है। यहां उन निर्णयों की पुनरावृत्ति करना आवश्यक नहीं है। इनका पूर्ण विवेचन आयोग की पूर्ववर्ती रिपोर्टों में किया जा चुका है[2]। यहां उन सब स्रोतों की विवेचना करना आशयित नहीं है जिन स्रोतों से न्यायपालिका को संकट उत्पन्न होता है। साधारणतया, यह माना जाता है कि यह संकट देश की राजनैतिक-कार्यपालिका से उत्पन्न होता है। क्या यही एक मात्र ऐसा स्रोत है? कुछ समय पूर्व दिल्ली में हुई एक संगोष्ठी में एक विधिवेत्ता

---

1. तथैव, पृ० 192.
2. भारत का विधि आयोग, 16वीं रिपोर्ट, पृ० 26-37.

ने अधिवक्ताओं से भी न्यायपालिका को उत्पन्न होने वाले संकट की बात कही थी। न्यायपीठों में कतिपय व्यक्तियों की नियुक्ति करने या उनकी नियुक्ति न करने की शिकायत करते हुए विभिन्न राज्यों की विधिज्ञ परिषदों के सदस्यों द्वारा हड़ताल किए जाने के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

1.18 अनेक हितबद्ध समूहों से विचार-विमर्श करने के दौरान इस बात का भी पता लगा कि लोगों की यह भी राय है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता को संकट स्वयं कुछ न्यायाधीशों की कार्रवाई से उत्पन्न होता है यह बताया गया कि एक न्यायाधीश राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचन लड़ने के लिए अपने पद से त्यागपत्र दे देता है। या अगले ही दिन संसद का सदस्य बनने के लिए रातों-रात त्यागपत्र दे देता है। इससे निःसंदेह, न्यायपालिका की अराजनैतिक प्रकृति के लिए संकट उत्पन्न होता है। उपर्युक्त विचार-विमर्श के दौरान यह बात भी बिल्कुल स्पष्ट होकर सामने आई कि न्यायाधीशों के बीच आन्तरिक झगड़ों को उजागर करते हुए ऐसी भाषा में न्यायपीठ में कार्यरत अपने साथी की आलोचना करना जिसमें शालीनता की कमी है, निःसंदेह अन्य बातों की तुलना में, न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए एक अधिक गंभीर संकट उत्पन्न करती है[1]।

1.19 उक्त विचार-विमर्श के दौरान, न्यायाधीशों के रूप में कार्य करते हुए ही उनके द्वारा "ब्रीफ" स्वीकार करने की हाल ही में प्रकट हुई कटु प्रवृत्ति पर भी ध्यान आकृष्ट किया गया। व्यक्तिगत मामलों की अनदेखी करते हुए, यह स्पष्ट किया गया कि एक न्यायाधीश जो कि पहले दिन उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद से सेवानिवृत्त होता है, अगले ही दिन वह उच्चतम न्यायालय के समक्ष अधिवक्ता के रूप में हाजिर हो जाता है। इस बात से प्रश्न यह उठता है कि उसने 'ब्रीफ' कब स्वीकार किया था? इस संदर्भ में यह कहा गया है कि यदि कोई न्यायाधीश पहले दिन त्यागपत्र देता है और अगले दिन किसी राजनैतिक पद के निर्वाचन में भाग लेता है तो यह बात आपत्तिजनक समझी जाती है। अतः आवश्यक संशोधन सहित यही बात न्यायाधीश के पद पर बने रहते हुए "ब्रीफ" स्वीकार करने की प्रवृत्ति को भी लागू होती है। ऐसे मामले बहुत कम हैं किन्तु समय रहते हुए यदि इस प्रवृत्ति को इसके शैशवकाल में ही समाप्त नहीं किया गया तो इससे बाद में स्थिति और खराब हो जाएगी।

1.20 यह बात बिल्कुल ही शंकास्पद नहीं है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता हमारे संविधान की सर्वप्रथम चिन्ताओं में से एक चिन्ता है[2]। यदि न्यायपालिका का दीप-स्तंभ प्रज्वलित रखे रहना है तो न्यायपालिका अनिंद्य होनी चाहिए और प्रपीड़न तथा राजनैतिक प्रभाव से मुक्त रहनी चाहिए[3]। न्यायपालिका शासन में जो अनन्य कृत्य संपन्न करती है वे इस बात को आज्ञापक बनाते हैं कि न्यायाधीशों को उस स्थान से बिल्कुल ही भिन्न स्थान दिया जाना चाहिए जो अधिकतर सरकारी अधिकारी को दिया जाता है[4]। इस प्रकार से न्यायिक स्वतंत्रता को एक मौलिक मूल्य के रूप में महत्व दिया जाता है और स्वभाविकतः तथा अनिवार्यतः ऐसा समझा भी जाने लगा है; यह भावना लोगों के जीवन और चिन्तन में इस प्रकार गहरा घर कर गई है कि अब इसे लगभग स्वयंसिद्ध मान लिया गया है और इससे विपरीत सोचना एक पागलपन का कार्य माना जाएगा।

1.21 सन् 1976 में, सोलह (16) न्यायाधीशों को उनके उन उच्च न्यायालयों से जहां वे पहले कार्य कर रहे थे, दूसरे उच्च न्यायालयों में स्थानान्तरित कर दिया गया था। संविधान के प्रवृत्त होने के पश्चात् पहली बार उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश को उस उच्च न्यायालय से, जहां वह नियुक्त किया गया था, उसकी सम्मति के बिना एक दूसरे न्यायालय में स्थानान्तरित कर दिया गया था। गुजरात उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश, श्री सांकलचन्द हिम्मतलाल सेठ[5] ने जिन्हें आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया था, विभिन्न आधारों पर अपने स्थानांतरण को चुनौती दी; इनमें से एक आधार यह था कि न्यायाधीश की सम्मति के बिना किया गया स्थानांतरण संविधान के अनुच्छेद 222 की व्याप्ति से बाहर है क्योंकि इसके परिणामस्वरूप न्यायपालिका की स्वतंत्रता समाप्त हो जाएगी। स्थानांतरण के उक्त आदेश को गुजरात उच्च न्यायालय की एक पूर्ण न्यायपीठ द्वारा विखंडित कर दिया गया था। भारत संघ ने उच्चतम न्यायालय में अपील की। उच्चतम न्यायालय में जो सबसे बड़ी दलील दी गई थी वह यह थी कि न्यायाधीश की सम्मति के बिना किया गया स्थानांतरण न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए खतरा है, जो कि हमारे संवि-

---

1. उपेन्द्र बख्शी, "जूडिशियल टैररिज्म सम थाट्स आन जस्टिस तुल्जपुरकरर्स पुणे स्पीच" "मैन स्ट्रीम, जनवरी 1, 1983".
2. भारत संघ बनाम एस०एच० सेठ, ए० आई० आर० 1977 एस०सी० 2398.
3. उपरोक्त पाद टिप्पण सं० 11, पृ० 164-165.
4. आर०एन०डाउसन "दि गवर्नमेंट आफ कनेडा" पृ० 433-434 (द्वितीय संस्करण) 1954.
5. उपरोक्त पाद टिप्पण सं० 24.

धान का एक मौलिक तत्व है और इसलिए न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 222(1) में उसकी सम्मति के बिना, शब्दों की परिसीमा पढ़नी चाहिए। न्या० चन्द्रचूड़ ने यह मत व्यक्त किया कि संविधान के आदि निर्माताओं ने यह प्रकल्पित किया था कि हमारी न्यायपालिका को, जिसे लोगों के अधिकारों और स्वतंत्रता के गढ़ के रूप में कार्य करना चाहिए, कार्यपालिका के प्रभाव और हस्तक्षेप से विमुक्त होना चाहिए। हमारी संविधान सभा ने न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुरक्षित और संरक्षित करने के उपबंध बनाकर ही इस संकल्पना को मूर्त रूप प्रदान किया था। इन उपबंधों को प्रगणित करने के पश्चात् उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि निर्विवाद रूप से इन उपबंधों का लक्ष्य उच्च न्यायालय को और यहां तक कि न्यायालय के अधिकारियों और सेवकों को भी कार्यपालिका के प्रभाव से सुरक्षित बनाना था। न्यायालय का काम अनुच्छेद 222 का ऐसा निर्वचन करना नहीं था। जो किसी भी प्रकार से न्यायपालिका की स्वतंत्रता को निष्प्रभावी बना दे किन्तु इस काम को अपने सामने सबसे आगे रखते हुए भी उच्चतम न्यायालय के बहुमत ने अनुच्छेद 222 में "उसकी सम्मति के बिना" शब्दों को पढ़ने से इंकार कर दिया। निःसंदेह न्यायालय के अल्पमत में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सम्मति के बिना किए गए स्थानांतरण अनुच्छेद 222 की परिधि से बाहर हैं। न्या० भगवती ने, जिन्होंने अल्पमत की ओर से निर्णय सुनाया था, यह मत व्यक्त किया कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता, हमारे संविधान पर अत्यंत विश्वास है और निर्भय-न्याय हमारे मौलिक दस्तावेज के महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं; और इसे सुनिश्चित करने तथा इसे गारंटीकृत करने के लिए यह बात अविचारणीय है कि संविधान के निर्माताओं ने इस बारे में कोई खामी संविधान में छोड़ दी थी और न्यायाधीश की सम्मति के बिना उसे स्थानांतरित करके उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को क्षति पहुंचाने के लिए कार्यपालिका को शक्ति प्रदान कर दी थी जिससे कि अन्य उपबंधों का प्रभाव समाप्त हो जाए तथा वे उपबंध अर्थहीन तथा विषयवस्तु रहित हो जाएं।

1.22 यही प्रश्न एस०पी० गुप्ता बनाम भारत संघ[1] के मामले में उच्चतम न्यायालय की एक वृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष उठाया गया था। साधारणतः यह मत पसंद किया गया था कि न्यायाधीश के व्य-वहार और आचरण में किसी अनुचित बात के कारण अकेले एक न्यायाधीश का विशेष रूप से किया गया स्थानांतरण निःसंदेह न्यायाधीश के लिए एक धब्बा होगा या उसे कलंक लग जाएगा और इस प्रकार से ऐसा स्थानांतरण न्यायाधीश के चरित्र पर एक अमिट छाप छोड़ जाएगा। यह कहा गया कि ऐसा स्थानांतरण अनुच्छेद 222 की परिधि से बाहर था और इस प्रकार से स्थानांतरण करने की शक्ति न्यायाधीशों को दबाव या ब्लैकमेल के प्रति आघात योग्य बनाती है।

1.23 न्यायपालिका की स्वतंत्रता को खतरा तत्कालीन विधि मंत्री द्वारा जारी किए गए एक परिपत्र से भी देखा गया था और इस तर्क के लिए व्यापक आधार दिए गए थे। अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील दी गई कि यदि उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के विषय में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय को प्राथमिकता नहीं दी गई तो न्यायपालिका की बहुमूल्य स्वतंत्रता खोखली हो जाएगी और कार्यपालिका अपने नामनिर्दिष्ट व्यक्तियों को न्यायपालिका पर थोपने में समर्थ हो जाएगी। विभिन्न प्रजातांत्रिक देशों में न्यायाधीशों की नियुक्ति की शक्ति का एक सर्वांगीण विश्लेषण किया गया था। बहुमत के द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि मुश्किल से ही ऐसा कोई देश है जिसमें न्यायाधीशों की नियुक्ति निर्वाचन के बजाय नामनिर्देशन द्वारा की जाती है; जहां कार्यपालिका चयन और नामनिर्देशन की शक्ति का उपभोग नहीं करती या यह कि न्यायपालिका को ऐसी नियुक्तियों के विषय में 'वीटो' का अधिकार है। तथापि, निष्कर्ष यह था कि न्यायपालिका को वीटो शक्ति दिए बिना, कार्यपालिका में न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति निहित करना, न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए घातक नहीं है[2]।

1.24 आमतौर पर अतीत के इतिहास पर इसलिए दृष्टिपात करना होता है क्योंकि प्रायः यह कहा जाता है कि अतीत पथप्रदर्शक भविष्य के लिए कुछ प्रकाश प्रदान करता है। अतीत पर दृष्टिपात करने का एक अतिरिक्त कारण यह भी है कि सामान्य मानव में निरंतरता की व्यवस्था करते हुए, शनैः शनैः विकास करने की प्रवृत्ति होती है। अतः औपनिवेशिक स्वामियों के अधीन भारत में, वरिष्ठ उच्च न्याय-पालिका के न्यायाधीशों की नियुक्ति की रीति के ऐतिहासिक विकास पर दृष्टिपात करना आवश्यक है, और हमें उस अवस्था से विचार करना है जहां कि संविधान सभा ने न्यायपालिका के लिए मानवशक्ति चयन हेतु वर्तमान उपबंधों को अधिनियमित किया था।

---

1. (1981) सप्लीमेंट एस सी सी 87.
2. तथैव, पृ० 593-595.

अध्याय II

भारत में वरिष्ठ न्यायपालिका के न्यायाधीशों की नियुक्ति की पद्धति का ऐतिहासिक विकास

भाग 1

2.1 गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट, 1915-1919 के माध्यम से न्यायपालिका के भारतीयकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई थी और इससे संबंधित आधारभूत मानदंड इसी में अधिकथित किए गए थे। भारतीय उच्च न्यायालयों से संबंधित उपबंधों का अधिनियम के भाग IX में उल्लेख किया गया है। उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त करने की शक्ति 'हिज मेजस्टी' को प्रदान की गई थी (धारा 101)। न्यायाधीशों को वेतन, भत्ते, फर्लो और सेवानिवृत्ति-पेंशन नियत करने की शक्ति सपरिषद् सचिव को प्रदान की गई थी। उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किए जाने के लिए अर्हताओं का उल्लेख धारा 101 की उपधारा (3) में किया गया था जिसमें, अन्य बातों के साथ-साथ, यह उपबंध किया गया था कि ऐसा व्यक्ति :

(क) इंग्लैंड या आयरलैंड का ऐसा बैरिस्टर होना चाहिए या स्काटलैंड के अधिवक्ता संकाय का ऐसा सदस्य होना चाहिए जिसकी अवस्थिति पांच वर्ष से कम न हो ; या

(ख) भारतीय सिविल सेवा का ऐसा सदस्य होना चाहिए जिसकी अवस्थिति दस वर्ष से कम न हो और जिसने कम से कम तीन वर्ष तक जिला न्यायाधीश के रूप में कार्य किया हो या उसकी शक्तियों का प्रयोग किया हो ; या

(ग) ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसने अधीनस्थ न्यायाधीश या लघु न्यायालय के न्यायाधीश पद से निम्न न्यायिक पद पांच वर्ष से कम की अवधि के लिए धारण न किया हो, या

(घ) ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो दस वर्ष से अनधिक अवधि के लिए उच्च न्यायालय का प्लीडर रहा हो। अंतिम दो अर्हक खंडों ने उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए भारतीयों की संभावनाओं को भी बढ़ा दिया था।

इसमें ऊपर उल्लिखित प्रत्येक श्रेणी के लिए आरक्षित कोटे की भी संकल्पना थी। यह कोटा इस प्रकार था कि मुख्य न्यायमूर्ति को शामिल करते हुए किन्तु अपर न्यायाधीशों को छोड़कर, उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की कम से कम एक तिहाई संख्या ऐसे बैरिस्टरों या अधिवक्ताओं की होनी चाहिए जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है और इस कोटे में भारतीय सिविल सेवा के सदस्यों की संख्या एक तिहाई से कम नहीं होनी चाहिए। धारा 102 में यह उपबंध किया गया था कि उच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश 'हिज मेजस्टी' के प्रसादपर्यन्त ही अपना पद धारण करेगा। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के बारे में उक्त औपनिवेशिक दृष्टिकोण की, जिसके बारे में यह ऊंचा दावा किया गया था कि 'ब्रिटिश न्याय' औपनिवेशिक कालोनी में अन्तःस्थापित किया जा रहा है, दो अप्रिय बातें ये थीं कि कार्यपालक शाखा का उच्च न्यायालय में कोटा था और यह कि पदावधि 'हिज मेजस्टी' के प्रसादपर्यन्त थी तथा वेतन और उपलब्धियां कार्यपालिका द्वारा अवधारित की जाती थीं। न्यायपालिका की स्वतंत्रता के उन समर्थकों को जो यूनाइटेड किंगडम से प्रेरणा लेते हैं 'ब्रिटिश न्याय' की प्रशंसा करने से पूर्व इन उपबंधों की समीक्षा कर लेनी चाहिए।

2.2 गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट, 1935 के भाग 1 में अन्तर्विष्ट धाराओं के समूह में संघीय न्यायालय और उच्च न्यायालयों को स्थापित करने के उपबंध किए गए थे। धारा 200 में एक संघीय न्यायालय की स्थापना के लिए उपबंध था और धारा 220 में उच्च न्यायालयों के गठन के लिए उपबंध थे। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश चार पृथक् और सुभिन्न समूहों से लिए जाने होते थे, अर्थात्: (i) इंग्लैंड और उत्तरी आयरलैंड के बैरिस्टरों या स्काटलैंड के अधिवक्ताओं में से; (ii) भारतीय सिविल सेवा के सदस्यों में से; (iii) ब्रिटिश इंडिया में न्यायिक पद धारण करने वाले व्यक्तियों में से ; और (iv) उच्च न्यायालयों में विधि व्यवसाय करने वाले प्लीडरों में से। उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त करने की शक्ति, जैसा कि धारा 220(2)

में उपबंधित है, 'हिज मेजस्टी' में निहित थी । एक उल्लेखनीय परिवर्तन यह था कि पदावधि में परिवर्तन 'हिज मेजस्टी' के प्रसाद से "को हटाकर एक निश्चित आयु की प्राप्ति" को जोड़ दिया गया था, यह आयु सीमा उस समय 60 वर्ष थी । वेतन, भत्ते तथा ऐसी ही अन्य उपलब्धियों और इसके साथ अवकाश और पेंशन से संबंधित ऐसे ही अन्य अधिकारों के अवधारण की शक्ति सपरिषद् 'हिज मेजस्टी' को प्रदान की गई थी। वह इसी प्रकार, संघीय न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त करने की शक्ति भी 'हिज मेजस्टी' में निहित थी और न्यायाधीश तब तक ही पद धारण कर सकता था जब तक कि वह 65 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेता था । वेतन, भत्ते परिलब्धियां, अवकाश और पेंशन से संबंधित अधिकारों का अवधारण करने की शक्ति भी सपरिषद् 'हिज मेजस्टी' में निहित थी । इन उपबंधों से निर्विवादतः यह प्रकट होता है कि वरिष्ठ न्यायपालिका में न्यायाधीश नियुक्त करने की शक्ति अनिर्बन्धित रूप से कार्यपालिका में निहित थी । किसी अन्य से परामर्श करने की भी आवश्यकता नहीं थी। ये उपबंध उस समय प्रचलित थे जबकि संविधान सभा आयोजित की गई थी और उसने वरिष्ठ न्यायपालिका की रूपरेखा तथा इस न्यायपालिका में कार्य करने के लिए मानवशक्ति के चयन से संबंधित प्रक्रिया की रूपरेखा के अवधारण की कार्रवाई प्रारंभ कर दी थी ।

2.3 संविधान सभा ने न्यायपालिका से संबंधित उपबंधों का प्रारूप तैयार करने के लिए विशेषज्ञों की एक समिति स्थापित की थी जिसमें संघ न्यायालय के एक पूर्ववर्ती न्यायाधीश श्री एस० वधाचेरियर, सर अलादी कृष्णा स्वामी अय्यर, श्री बी०एल० मित्तल, श्री के०एम०मुंशी और सांविधानिक सलाहकार, श्री बी०एन० राव थे । इस समिति ने 21 मई, 1945 को अपनी रिपोर्ट पेश की । समिति का दृष्टिकोण गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट, 1935 के उपबंधों से व्यापक रूप से प्रभावित था[1] । स्वतंत्रता के प्रादुर्भाव से बहुत पहले, यह दृष्टिकोण व्यापक रूप से घर कर गया था कि प्रत्येक राज्य का अपना एक उच्च न्यायालय होने के साथ-साथ न्यायपालिका के शिखर पर एक उच्चतम न्यायालय भी होना चाहिए । एक ऐसी परिसंघीय संरचना में जिसमें परिसंघ और परिसंघीय इकाइयों के बीच शक्तियों का विभाजन हो तथा 'बिल आफ राइट्स' वाला लिखित संविधान हो---इन सबसे मिलकर बने एक ऐसे निकाय की अनिवार्य आवश्यकता पर बल दिया गया जिसे इस बात का अवधारण करने की शक्तियां होंगी कि क्या किसी की शक्ति पर दूसरे के द्वारा अतिक्रमण किया गया है अथवा नहीं । इस बात ने उच्चतम न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदान करना आवश्यक बना दिया। उच्चतम न्यायालय संविधान द्वारा सृजित शक्ति के प्रत्येक केन्द्र को विहित परिसीमाओं में रखने वाला एक रक्षक देवदूत बन गया । अनिवार्यतः ऐसे निकाय को कार्यपालिक और राजनैतिक हस्तक्षेप से सुरक्षित बनाया जाना चाहिए ।

2.4 विशेषज्ञों की समिति उन विभिन्न उपबंधों को रूप देने में जुट गई जिन उपबंधों के अधीन भारत के उच्चतम न्यायालय की और प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय की स्थापना की जाएगी । संविधान का यह प्रारूप, परिसंघीय न्यायालय के न्यायाधीशों को उनकी टिप्पणियों के लिए भेजा गया । परिसंघीय न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति ने उक्त न्यायालय के न्यायाधीशों और भारत के उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों का एक सम्मेलन आयोजित किया । सम्मेलन ने परिसंघीय न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को इस सम्मेलन में विचार व्यक्त करने के लिए एक ज्ञापन प्रस्तुत करने के लिए प्राधिकृत किया । उक्त ज्ञापन में अभिव्यक्त विभिन्न मतों में से एक ऐसा मत जिस पर ध्यान आकृष्ट किया जाना चाहिए, यह है कि परिसंघीय न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों ने एक स्वतंत्र, ईमानदार और दक्ष न्यायपालिका के निर्भय कार्यकरण को अभिनिश्चित करने के महत्व को सर्वोपरि स्थान दिया है[2] ।

भाग 2

न्यायपालिका से सम्बन्धित सांविधानिक उपबन्ध

2.5 वरिष्ठ न्यायपालिका में नियुक्ति के प्रश्न से संबंधित विभिन्न सांविधानिक उपबंधों का संक्षिप्त विवरण यहां देना उपयोगी होगा ।

2.6 संविधान का भाग V संघ न्यायपालिका के बारे में है । संविधान का अनुच्छेद 124 उच्चतम न्यायालय की स्थापना और गठन का उपबंध करता है । इसी अनुच्छेद का खंड (2) यह उपबंध करता है कि उच्चतम न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय के और राज्यों के उच्च न्यायालयों के

1. बी० शिवा राव, "दि फ्रेमिंग आफ इंडियाज कांस्टीट्यूशन-ए स्टडी," पृ० 483.
2. बी० शिवा राव, आफ इंडियाज कांस्टीट्यूशन : सेलेक्शन डाक्यूमेंट्स", जिल्द 4 पृ० 194.

ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करने के पश्चात्, जिनसे राष्ट्रपति इस प्रयोजन के लिए परामर्श करना आवश्यक समझे, राष्ट्रपति के हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त किया जाएगा और वह न्यायाधीश तब तक पद धारण करेगा जब तक वह 65 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेता है। इस खंड का एक परन्तुक है जो उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न किसी अन्य न्यायाधीश की उच्चतम न्यायालय में नियुक्ति के लिए भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करना आबद्धकर बनाता है। नियुक्ति के लिए अर्हताएं इसी अनुच्छेद के खंड (3) में दी गई हैं। खंड (4) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के हटाए जाने के लिए उपबंध करता है। इस प्रकार, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को नियुक्त करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। राष्ट्रपति इस कार्यपालक शक्ति के प्रयोग में, अनुच्छेद 74 द्वारा यथाअपेक्षित मंत्री परिषद् द्वारा इन्हें दी गई सलाह से आबद्धकर होगा।

2.7 संविधान के अध्याय V का भाग 6, राज्यों में उच्च न्यायालयों के बारे में है। अनुच्छेद 214 यह उपबंध करता है कि प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय होगा। ऐसे प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायमूर्ति और ऐसे अन्य न्यायाधीश होंगे जैसे राष्ट्रपति, समय-समय पर नियुक्त करना आवश्यक समझे। अनुच्छेद 217 में यह उपबंध किया गया है कि उच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से, उस राज्य के राज्यपाल से और मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न किसी न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करने के पश्चात् राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त करेगा। उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किए जाने के लिए अर्हताएं खंड (2) में अधिकथित हैं। यहां भी, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को नियुक्त करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित है जो इस कार्यपालक शक्ति का प्रयोग करते समय अनुच्छेद 74 के अधीन उसे दी गई सलाह से आबद्ध होगा। किसी न्यायाधीश की नियुक्ति करने से पूर्व, राष्ट्रपति के लिए भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से, संबंधित राज्य के राज्यपाल और उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करना आबद्धकर है जिस उच्च न्यायालय में चुने गए व्यक्ति को नियुक्त किया जाना है। राज्य के राज्यपाल के साथ किए जाने वाले परामर्श से राज्य कार्यपालिका का हस्तक्षेप विवक्षित है जिसका प्रतिनिधित्व अनुच्छेद 163 में यथा आदिष्ट मंत्रि-परिषद् द्वारा किया जाता है। अतः यह प्रतीत होगा कि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति, सम्बद्ध राज्य की मंत्रि-परिषद्, राज्य का राज्यपाल, भारत का मुख्य न्यायमूर्ति और केन्द्रीय मंत्रि-परिषद्— ये सब ही उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति करने और उसे अंतिम रूप देने की प्रक्रिया में अंतर्वलित हैं। तथापि, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति से संबंधित सांविधानिक स्कीम स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित करती है कि नियुक्त करने की शक्ति भारत के राष्ट्रपति में निहित है जो शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य[1] के मामले में किए गए विनिश्चय के अनुसार मंत्रि-परिषद् की सलाह के अनुसार कार्य करने के लिए आबद्ध होगा।

2.8 संविधान का अनुच्छेद 124 (2) और अनुच्छेद 217 क्रमशः उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त करने के लिए राष्ट्रपति को शक्ति प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 124(2) और अनुच्छेद 217(1) यह सुनिश्चित करते हैं कि उच्चतम न्यायालय के और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश शुद्ध आचरण के दौरान ही पद धारण करेंगे और वे महा अभियोग के सदृश्य प्रक्रिया द्वारा साबित किए गए कदाचार या असमर्थता के कारण ही हटाए जा सकेंगे। यह स्थिति वर्ष 1947 से पूर्व की स्थिति से बिल्कुल ही प्रतिकूल है। अर्थात् यह कि न्यायाधीश 'हिज मेजस्टी' के प्रसादपर्यन्त ही पद धारण करेंगे, फिर भी संविधान 'प्रसाद के सिद्धांत' को बनाए रखे हुए है। अनुच्छेद 310 यह उपबंध करता है कि जब तक प्रतिकूल उपबंध न किया गया हो, प्रत्येक व्यक्ति जो रक्षा सेवा का संघ या राज्य की सिविल सेवा का सदस्य है, यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्य के राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त पद धारण करता है। वरिष्ठ न्यायपालिका के न्यायाधीशों की नियत पदावधि शुद्ध आचरण के अधीन रहते हुए, सुनिश्चित है। उनकी पदावधि, वेतन, पेंशन तथा सेवा की अन्य शर्तें गारंटीकृत हैं और इन्हें न्यायाधीश की पदावधि के दौरान कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। एक प्रकार से न्यायपालिका को, बाहरी दबाव से जिसमें कार्यपालिका का दबाव भी शामिल है, सुरक्षित रखा गया है।

2.9 इतना सब कुछ उल्लेख करने के पश्चात् सीधे तौर पर यह स्वीकार कर लिया जाना चाहिए कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति सहित, वरिष्ठ न्यायपालिका के सदस्यों की नियुक्ति की शक्ति राष्ट्रपति, अर्थात्

1. ए०आई०आर० 1974 एस०सी० 2192, 2290.

कार्यपालिका में निहित है। संविधान के अधीन उस स्थिति की तुलना में बिल्कुल ही कोई अन्तर नहीं आया है जो संविधान के प्रारंभ से पूर्व थी, सिवाय इसके कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को विनिर्दिष्ट भूमिकाएं प्रदान की गई हैं। संविधान सभा में किया गया वाद-विवाद इस बात को स्पष्ट रूप से सामने लाता है कि क्या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को छोड़ कर, वरिष्ठ न्यायपालिका में की जाने वाली नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से नहीं अपितु उसकी सहमति से की जानी चाहिए। भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति का उपबंध करने वाले इस विनिर्दिष्ट सुझाव का विनिर्दिष्ट रूप से प्रस्ताव किया गया था और इसे नामंजूर कर दिया गया था[1]।

2.10 वर्तमान स्थिति यह है कि आमतौर पर उच्चतम न्यायालय में किसी रिक्ति को भरने के लिए एक औपचारिक प्रस्ताव, विधि और न्याय मंत्री को, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा ऐसे व्यक्ति के नाम की सिफारिश करके प्रारंभ किया जाता है जिसे वह उपयुक्त समझे। यदि मंत्री महोदय इस सिफारिश को स्वीकार करते हैं तो यह प्रस्ताव भारत के प्रधान मंत्री को अग्रेषित कर दिया जाता है जो, यदि इस प्रस्ताव का अनुमोदन करता है तो, राष्ट्रपति को अपने हस्ताक्षर के अधीन नियुक्ति का औपचारिक अधिपत्र जारी करने की सलाह देता है। इसी प्रकार, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के मामले में, औपचारिक प्रस्ताव उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की ओर से किया जाता है और यदि यह प्रस्ताव राज्य के मुख्य मंत्री, राज्य के राज्यपाल, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति तथा भारत के विधि और न्याय मंत्री द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो इस प्रस्ताव पर आगे कार्रवाई होती है और इसे भारत के प्रधान मंत्री के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है जो, यदि वह इस सिफारिश का अनुमोदन करता है तो, राष्ट्रपति को नियुक्ति का औपचारिक अधिपत्र जारी करने के लिए सलाह देता है। भारत के प्रधान मंत्री का हस्तक्षेप मात्र औपचारिक नहीं है। ऐसे भी मामले सामने आए हैं जहां कि यदि भारत सरकार के विधि और न्याय मंत्री ने भी किसी सिफारिश को स्वीकार कर लिया है किन्तु फिर भी उसे इसलिए प्रभावी नहीं बनाया गया क्योंकि भारत के प्रधान मंत्री की ओर से आपत्ति थी।[2] अतः भारत के प्रधान मंत्री का हस्तक्षेप वास्तविक और सारवान् है।

2.11 जिला न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति करने या इस पद पर प्रोन्नति प्रदान करने की शक्ति राज्य के राज्यपाल को प्रदत्त की गई है जो राज्य के उच्च न्यायालय के परामर्श से प्रयुक्त की जानी होती है।[3] इसी प्रकार, राज्य की न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीश से भिन्न पद पर किसी व्यक्ति को नियुक्त करने की शक्ति राज्य के राज्यपाल में निहित है जो शक्ति ऐसे राज्य के संबंध में अधिकारिता का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय और राज्य लोक सेवा संघ के परामर्श के पश्चात् इस निमित्त उसके द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार प्रयुक्त की जानी होती है।[4] विधि आयोग ने अपनी दो पूर्ववर्ती रिपोर्टों में[5] संविधान के अनुच्छेद 233 और अनुच्छेद 234 द्वारा प्रदत्त शक्ति का विस्तार से विश्लेषण किया है और इसलिए यहां इसी पहलू की पुनः समीक्षा करना अनावश्यक है।

2.12 विशेषकर, वरिष्ठ उच्च न्यायालय में भर्ती करने से संबंधित उपबंधों का (अनुच्छेद 124, 217 और 224) उच्चतम न्यायालय के सात न्यायाधीशों की एक न्यायपीठ के समक्ष हाल ही में एक आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया था।[6] दलीलों के दौरान न्यायाधीशों की राय में एक स्पष्ट दरार सामने आई। दो असमाधानपूर्ण स्थितियां जो सामने आईं, वे इस प्रकार थीं---(1) उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति के विषय में अंतिम निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति का होना चाहिए। गम्भीर समीक्षा करने के पश्चात् इस स्थिति को केवल उस भाषा के कारण ही चलने योग्य नहीं पाया गया, जिस भाषा में ये उपबंध अधिकथित थे अपितु, निर्वचन के लिए बाह्य सहायता के अवलम्ब के रूप में संविधान के सभा सुसंगत वाद-विवाद के प्रति निर्देश करके भी इसे चलने योग्य नहीं पाया गया, जिस वाद-विवाद ने ऐसे प्रस्ताव को स्पष्ट शब्दों में नामंजूर कर दिया था; (2) वरिष्ठ न्यायपालिका में नियुक्ति के विषय में अंतिम निर्णय कार्यपालिका पर छोड़ देने से यह संभावना है कि

---

1. संविधान सभा वादविवाद, जिल्द 8, पृ० 230, 258.
2. एच० एम० सीरवाई, "कांस्टीट्यूशनल लॉ आफ इंडिया", जिल्द 2, पृष्ठ 2295 (तृतीय संस्करण), 1984.
3. भारत का संविधान, अनुच्छेद 233.
4. तथैव, अनुच्छेद 234.
5. भारत का विधि आयोग, 116वीं रिपोर्ट भारत का विधि आयोग 118वीं रिपोर्ट.
6. एस०पी०गुप्ता बनाम भारत संघ, (1981) सप्लीमेंट, एस० सी० सी० 87.

कार्यपालिका, न्यायपालिका को अपने नामनिर्दिष्ट व्यक्तियों से ही भर देगी जिससे न केवल न्यायपालिका की स्वतंत्रता ही नष्ट हो जाएगी अपितु यह बात न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए घातक भी होगी। शब्द-जाल को छोड़ दें तो दलील यह थी कि यद्यपि भारत का मुख्य न्यायमूर्ति उन सांविधानिक कृत्यकारियों में से एक है जिसके साथ नियुक्ति के विषय में परामर्श किया जाना होता है किन्तु फिर भी न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुदृढ़ बनाने की दृष्टि से निर्वचन की प्रक्रिया के द्वारा, उनके दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। दूसरी ओर, इस दलील को यह कह कर नामंजूर कर दिया गया था कि न्यायालय निर्वचन की प्रक्रिया द्वारा विवक्षित तौर से इन उपबंधों में ऐसी कोई अन्य बात नहीं पढ़ सकता जिसका अभिव्यक्ततः सुझाव तो दिया गया था किन्तु जिसे नामंजूर भी कर दिया गया था। अनधिक्षेपणीय साक्ष्य के होते हुए भी बहुमत ने इस दलील को नामंजूर कर दिया था कि नियुक्ति के विषय में मुख्य न्यायमूर्ति के दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। न्यायमूर्ति भगवती ने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायाधीश के रूप में किसी व्यक्ति की नियुक्ति करने का प्रस्ताव केन्द्र सरकार द्वारा या उन तीनों सांविधानिक कृत्यकारियों में से किसी एक के द्वारा जिनसे परामर्श करना अपेक्षित है, प्रारम्भ किया जा सकता है और यह प्रस्ताव किसी ओर से भी आए, फिर भी अन्य सांविधानिक कृत्यकारियों से उसी संपूर्ण और एक जैसी सामग्री के आधार पर इस प्रस्ताव के बारे में परामर्श किया जाना अपेक्षित है।[1] केन्द्र सरकार उन सांविधानिक कृत्यकारियों द्वारा दी गई राय पर अभिभावी होने के लिए स्वतंत्र है, जिनसे परामर्श किया जाना अपेक्षित है और उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के बारे में तब तक अपना विनिश्चय करने के लिए स्वतंत्र है जब तक कि उक्त विनिश्चय सुसंगत विचारणाओं पर आधारित है और अन्यथा असद्भाविक नहीं है[2] उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि तीनों सांविधानिक कृत्यकारियों में से प्रत्येक की राय बराबर महत्व दिए जाने की हकदार है और यह कहना सम्भव नहीं है कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय को अन्य दो संविधानिक कृत्यकारियों की राय की तुलना में प्राथमिकता दी जानी चाहिए। यदि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय को प्राथमिकता दी जानी है तो सारतः और तथ्यतः ऐसा करना उनकी सहमति प्राप्त करने की कोटि में आएगा क्योंकि प्राथमिकता देने का अर्थ है कि उनकी राय उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति और राज्य के राज्यपाल की राय पर अभिभावी होगी और यह कि केन्द्र सरकार को उनकी राय अवश्य स्वीकार करनी चाहिए।[3] यह भी उपदर्शित किया गया था कि यदि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की और सम्बद्ध उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की किसी अपर न्यायाधीश की नियुक्ति की पुष्टि करने या उसकी पदावधि को नवीकृत करने के बारे में एक ही राय है तो केन्द्र सरकार को आमतौर पर इसे स्वीकार कर लेना चाहिए अन्यथा, उसके विनिश्चय पर आक्षेप किया जा सकेगा और यह दर्शित करने का भारी भार केन्द्रीय सरकार पर होगा कि उसके पास भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से असहमत होने के तर्कसंगत कारण हैं।[4] मोटे तौर पर कहा जाए तो बहुमत की राय; कुछ आंशिक परिवर्तनों सहित, इसी दृष्टिकोण के पक्ष में थी।

2.13 काफी लोगों की यह भी राय है कि बहुमत के विनिश्चय से वरिष्ठ न्यायपालिका में नियुक्ति के विषय में भारत के न्यायमूर्ति की स्थिति नाजुक हो गई है, न्यायपालिका की स्वतंत्रता की सुरक्षित सीमाओं में और अधिक घुसपैठ हो गई है और कुछ सीमा तक न्यायपालिका की स्वतंत्रता में बोधगम्य कमी हो गई है। वरिष्ठ न्यायपालिका में कार्य करने के लिए व्यक्तियों के चयन के विषय में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के दृष्टिकोण की समीक्षा करना और इसका सूक्ष्म विश्लेषण करना एक रूचिपूर्ण अध्ययन का विषय होगा इस बारे में प्रयुक्त मापमान क्या था; ऐसे कौन से मापदंड विकसित किए गए थे जिसके संदर्भ में चयन वस्तुपरकरूप से किया गया था या क्या यह एक पूर्णतः आत्मपरक प्रक्रिया थी। इस बात का पता लगाना भी समान रूप से रुचिपूर्ण होगा कि क्या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सिफारिश एस०पी० गुप्ता वाले मामले से पूर्व की अवधि में आमतौर पर स्वीकार कर ली जाती थी। वस्तुतः जब भी ऐसा अवसर आया तब ही भारत सरकार के प्रवक्ता ने बड़े जोरदार शब्दों में यह प्राक्कथन किया और इसी बात को दोहराया कि प्रत्येक नियुक्ति भारत सरकार के मुख्य न्यायमूर्ति की सिफारिश को स्वीकार

1. एस० पी० गुप्ता बनाम भारत संघ (1981) सप्लीमेंट, पृ० 256.

2. तथैव, पृ० 228.

3. तथैव, पृ० 229.

4. तथैव, पृ० 245.

करके ही की गई थी और कम से कम भारत के उच्चतम न्यायालय में तो ऐसी कोई भी नियुक्ति नहीं की गई है जिसकी सिफारिश भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा नहीं की गई है।

2.14 विधिवेत्ताओं ने और भारत के संविधान के टीकाकारों ने यह राय व्यक्त की कि उक्त मामले में दिए गए बहुमत के निर्णय से न्यायपालिका को स्वतः कारित क्षति पहुंची है।[1] एक प्रसिद्ध विधिवेत्ता ने, जिन्होंने अपना नाम बताने से संकोच किया है, अत्यन्त कटु स्वर में यह कहा कि शासकीय सौजन्य और औपचारिक प्रक्रिया स्वरूप सरकार को इस प्राक्कथन के लिए पर्याप्ततः न्यायोचित्त ठहराया जाएगा कि भारत के उच्चतम न्यायालय में की गई प्रत्येक नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सिफारिश से की गई है। किन्तु ऐसी सिफारिश कैसे उद्‌दापित की जाती है इस बात की गहराई से समीक्षा करने की आवश्यकता है। उन्होंने सेवा-निवृत्ति के पश्चात् भारत के एक पूर्ववर्ती मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा दिए गए एक वक्तव्य के प्रति भी निर्देश किया जो उनके कथन की पुष्टि करता है। **एस०पी० गुप्ता वाले मामले** में दिए गए विनिश्चय से पूर्व और उसके पश्चात् भी भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। किन्तु यदि इन सभी परिस्थितियों में, नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सिफारिश पर ही की गई है तो प्रायः दोहराई जाने वाली इस टिप्पणी को स्वीकार करना कठिन है कि भारतीय न्यायपालिका के उच्चतम महानुभाव अर्थात् भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय को प्राथमिकता न देने से न्यायपालिका की स्वतंत्रता अत्यन्त जर्जर हो गई है। अभिलेख को सही करने के लिए न्यायपालिका के विषय में मुख्य न्यायमूर्ति की राय के मूल्यांकन को स्मरण करना आवश्यक है, जो राय **शमशेर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[2] के मामले में व्यक्त की गई थी। इसमें यह कहा गया है कि :

> "सभी संभव मामलों में भारतीय न्यायपालिका के उच्चतम महानुभाव से किया गया परामर्श भारत सरकार द्वारा स्वीकार किया जाएगा और स्वीकार किया भी जाना चाहिए और न्यायालय को ऐसी किसी भी बात की समीक्षा करने का अवसर प्राप्त होगा यदि कोई असंबद्ध परिस्थितियां मंत्री के अभिमत में शामिल की गई हैं---यदि वह भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा दी गई राय से विचलन करता है। प्रथा के अनुसार ऐसे संवेदनशील विषय के संबंध में अंतिम निर्णय भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का होना चाहिए क्योंकि ऐसे मामलों में उसकी राय को नामंजूर करने के बारे में सामान्यतः यह समझा जाता है कि ऐसा कार्य आदेश को दूषित करने वाली असंबद्ध विचारणाओं के द्वारा प्रेरित था।"[3]

2.15 तथापि, उसी विद्वान न्यायाधीश ने ऊपर उद्धृत प्राक्कथन के तीन वर्ष पश्चात् इसी संदर्भ में **भारत संघ बनाम सांकलचन्द हिम्मत लाल सेठ**[4] के मामले में निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :

> "इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि यदि सरकार भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय से विचलन करती है तो उसे इस संबंध में तर्कसंगत और संतोषजनक कारण देकर अपनी कार्रवाई को न्यायोचित सिद्ध करना होगा और यदि इसे चुनौती दी जाती है तो न्यायालय के समाधान पर्यन्त यह साबित करना होगा कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सलाह को स्वीकार न करने के लिए मामला तैयार किया गया था...... । निःसंदेह, मुख्य न्यायमूर्ति को 'वीटो शक्ति' नहीं है---जैसा कि डा० अम्बेडकर ने संविधान सभा में स्पष्ट किया था।"[5]

2.16 संविधान सभा में इस विषय से संबंधित वाद-विवाद के प्रति निर्देश करने से संविधान के आदि निर्माताओं की मानसिक प्रक्रिया पर प्रकाश पड़ेगा। न्यायपालिका से संबंधित अनुच्छेदों के बारे में वाद-विवाद को समाप्त करते हुए डा० अम्बेडकर ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया कि---

> "मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति के प्रश्न के संबंध में मुझे यह प्रतीत होता है कि जो लोग इस प्रतिपादना का समर्थन करते हैं वे अप्रत्यक्ष रूप से मुख्य न्यायमूर्ति की निष्पक्षता और उसके निर्णय

---

1. एच० एम० सीरवाई "कांस्टीट्यूशनल लॉ आफ इंडिया" जिल्द 2, पृ० 2177.
2. शमशेर सिंह **बनाम** भारत संघ (1974) 2 एस सी सी 831.
3. तथैव, पृ० 882.
4. (1977) 4 एस सी सी 193.
5. तथैव, पृ० 274

की सुदृढ़ता, दोनों का ही अवलंब लेते हैं। मुझे व्यक्तिगत रूप से इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि भारत का मुख्य न्यायमूर्ति एक प्रतिष्ठित व्यक्ति है। किन्तु आखिरकार मुख्य न्यायमूर्ति ऐसी सभी असफलताओं, भावनाओं और दुर्भावनाओं वाला मनुष्य ही तो है जो सब हम जैसे सामान्य व्यक्तियों में होती है; और मेरा विचार है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति के विषय में मुख्य न्यायमूर्ति को 'वीटो' का अधिकार देना वस्तुतः मुख्य न्यायमूर्ति को ऐसा संपूर्ण प्राधिकार देने के समान है जिन्हें वस्तुतः हम, तत्कालीन राष्ट्रपति या सरकार में भी निहित करने के लिए तैयार नहीं है। अतः मेरा यह विचार है कि यह एक खतरनाक प्रतिपादना है"।[1]

इस प्रक्रिया में श्री बी० पोखर साहिब द्वारा पेश किया गया दृष्टिकोण भी नामंजूर हो गया जिन्होंने दो विभिन्न संशोधनों, सं० 1818 और 2584 के बारे में नोटिस दिया था जिनमें भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के विषय में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति के लिए उपबंध किया गया था। प्रारूप अनुच्छेद सं० 193 के संबंध में संशोधन इस प्रकार से विनिर्दिष्टतः नकार दिया गया था।[6] अतः यह प्रकट होता है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश या किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के विषय में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय को प्राथमिकता देने की बात विनिर्दिष्टतः उठाई गई थी और नामंजूर कर दी गई थी और जिस बात को अभिव्यक्ततः नामंजूर कर दिया गया था, उसे अन्न विवक्षित तौर पर नहीं पढ़ा जा सकता है। सूचना के प्राथमिक स्रोत से अर्थात् सभा के वाद-विवाद से चूंकि उक्त सांविधानिक स्थिति प्रकट होती है इसीलिए बहुमत का निर्णय इस बात के पक्ष में था।

2.17 अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि स्वयं संविधान सभा ने उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के विषय में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय को प्राथमिकता देने के दावे को नामंजूर कर दिया था; और फिर भी यह विवाद जारी है कि उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए किसी व्यक्ति का चयन करने के संबंध में कार्यपालिका को यदि अनिर्बन्धित शक्ति दे दी जाती है तो यह बात न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए घातक होगी।

2.18 संविधान और इसके पूर्ववर्ती विधिक दस्तावेजों के सुसंगत उपबंधों की समीक्षा करने के पश्चात् तथा अपने आपको इस बात से अवगत करा लेने के पश्चात् कि देश के उच्चतम न्यायालय द्वारा उक्त उपबंध का प्राधिकारपूर्ण निर्वचन करने से इनका अर्थ और प्रभाव क्या है, अब हम उस अवस्था में पहुंच गए है जहां इन उपबंधों के वास्तविक और व्यावहारिक कार्यकरण के परिणाम को निकाला जा सकता है और इस बात का मूल्यांकन करने के लिए इनका निष्पक्ष विश्लेषण किया जा सकता है कि क्या इन उपबंधों में अन्तर्विष्ट स्कीम समय की कसौटी पर खरी उतरी है या एकदम विसंगत हो गई है और अब एक नए माडल की खोज करना आवश्यक हो गया है या नहीं। इस संबंध में यह सावधानी बरतनी होगी कि ऐसी दशा में किसी नए माडल की तत्काल खोज नहीं की जानी चाहिए, यदि संविधान के आदि निर्माताओं द्वारा विरचित और प्रचलित स्कीम को उस धुंधलके से निकालकर अब भी साफ किया जा सकता है जिससे यह आच्छादित हो गई थी या इसमें उपान्त समायोजन किए जा सकते हैं। अतः वर्तमान पद्धति के परिणामों की समीक्षा करना आवश्यक है।

---

1. संविधान सभा वाद-विवाद, जिल्द 8, पृ० 258.
2. तथैव, पृ० 674.

अध्याय III

पद्धति का परिणाम और वर्तमान स्थिति

3.1 वरिष्ठ न्यायपालिका में नियुक्ति की जिस पद्धति का गत अध्याय में उल्लेख किया गया है वह लगभग पिछले चार दशकों से प्रचलित है। क्या यह पद्धति समय की कसौटी पर खरी उतरी है? क्या यह कार्यकरण की दृष्टि से सुदृढ़ है ? क्या यह उस प्रयोजन को सिद्ध करती है जिस के लिए यह पद्धति बनाई गई थी ? क्या यह पद्धति परिणामोन्मुख है ? क्या यह उन अपेक्षाओं को पूरा करती है जिनकी संविधान के द्वारा अपेक्षा की गई है। क्या इसमें कोई त्रुटियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। यदि ऐसा है तो क्या इन त्रुटियों से इस पद्धति में कुछ बुनियादी त्रुटियों का पता लगता है या इस पद्धति के कार्यकरण की क्रियाविधि में किन्हीं दोषों या कमियों या गलतियों का संकेत मिलता है ?

3.2 विधिआयोग ने वर्ष 1979 में[1] न्यायाधीश की नियुक्ति की पद्धति पर विचार-विमर्श किया था। वस्तुतः सन् 1973 में न्यायाधीशों के अतिष्ठित किए जाने के संविवाद और जनवरी 1977 में इसके दोहराए जाने के पश्चात् वरिष्ठ न्यायपालिका में नियुक्ति की यह पद्धति न्यायाधीशों और विधि व्यवसाय के सदस्यों तथा विधि-वेत्ताओं में एक संविवाद का विषय बन गई है। भारत सरकार का ध्यान भी इधर आकृष्ट हुआ है। सचिव, विधि न्याय और कम्पनी मंत्रालय ने भी विधि आयोग के सदस्य-सचिव को 29 दिसंबर, 1977 को एक पत्र भेजा जिसमें यह कहा गया कि प्रधान मन्त्री ने यह निर्देश दिया है कि उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के प्रश्न की समीक्षा की जाए; इसके परिणाम-स्वरूप विधि आयोग को निर्देश भेजा गया जिससे कि 'विधि आयोग इस समस्या का गहराई से अध्ययन कर सके और सुधार की संभावनाओं का पता लग सके'। अतः भारत सरकार ने भी सुसंगत समय में यह महसूस किया कि वरिष्ठ न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति की तत्समय प्रचलित क्रियाविधि का गहराई से अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है और उसको ऐसी दिशा दिए जाने की आवश्यकता है जिसके परिणाम स्वरूप इसमें ऐसा सुधार किया जा सके जिससे यह क्रियात्मक हो सके। इसे सही व्यक्तियों के शीघ्र चयन में सहायता मिल सके और न्यायाधीशों की नियुक्ति करने के विषय में परिहार्य विलंब को दूर करके न्यायालय में लंबित मामलों की बढ़ती हुई संख्या की समस्या को सुलझाने में सहायक हो सके। विधि आयोग ने इस समस्या पर गंभीर विचार करने के उपरांत निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला[2]।

> "इस विषय पर गंभीर चिन्तन करने के पश्चात् हम उच्च न्यायालयों के मत से सहमत है और हमारी यह भी राय है कि वर्तमान सांविधानिक स्कीम, जो संविधान के आदि निर्माताओं के द्वारा पर्याप्त विचार-विमर्श के पश्चात् और विभिन्न देशों में न्यायाधीशों की नियुक्ति की विभिन्न रीतियों को ध्यान में रखने के पश्चात् ही विकसित की थी **बुनियादी तौर पर सुदृढ़ है। कुल मिलाकर यह स्कीम संतोषजनक रही है और इसमें किसी आमूल परिवर्तन की आवश्यकता नहीं। तथापि, इस स्कीम के कार्यकरण में कुछ पहलू हैं जिनके बारे में हम इसलिए सिफारिशें करना आवश्यक समझते हैं जिससे कि जैसा कि हमारा विश्वास है, इस स्कीम के कार्यकरण में कुछ सुधार किए जा सकें।** हम अपनी सिफारिश इस विषय के विभिन्न पहलुओं पर विचार करते समय करेंगे। (रेखांकन हमारे द्वारा किया गया)।"

अतः अगस्त 1979 में विधि आयोग की, विभिन्न उच्च न्यायालयों से विचार-विमर्श करने के पश्चात् यह पक्की राय थी कि विद्यमान पद्धति बुनियादी तौर पर सुदृढ़ है और कुल मिलाकर यह संतोषजनक रही है और इसमें कोई आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। विधि

---

1. भारत का विधि आयोग, 80वीं रिपोर्ट.

2. तथैव, पृ० 21.

आयोग द्वारा निकाले गए इस निष्कर्ष को उच्च न्यायालयों की व्यापक राय से समर्थन मिला है। विधि आयोग की रिपोर्ट और इसके द्वारा जारी की गई प्रश्नावली का सूक्ष्म अध्ययन करने से यह प्रकट होता है कि वरिष्ठ न्यायपालिका में नियुक्तियां करने में होने वाला व्यापक विलम्ब बहुत स्पष्ट नहीं था या यह इतना गंभीर नहीं था कि इसके परिणामस्वरूप विलंब के कारणों का विश्लेषण किया जाए। एक या दूसरे निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, ऐसा प्रतीत होता है कि किसी प्रकार की सांख्यकीय सूचना एकत्रित नहीं की गई है।

3.3 उच्च न्यायालयों में और अन्य अपील न्यायालयों में लंबित मामलों की बढ़ती संख्या और विलंब की समस्या पर विचार करने वाली 79वीं रिपोर्ट में विधि आयोग ने विशेष तौर पर उच्च न्यायालयों में रिक्तियों के भरने में होने वाले विलंब से संबंधित प्रश्न की समीक्षा की थी। उच्च न्यायालयों में मामलों के संस्थित किए जाने और उनके निपटाए जाने से संबंधित अपेक्षित सूचना एकत्रित करने के पश्चात् विधि आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि संपूर्ण देश में 1977 में उच्च न्यायालयों द्वारा निपटाए जाने वाले मामलों की संख्या, वर्ष 1977 के दौरान, संस्थित किए गए मामलों की संख्या से कम थी।[1] मामलों के शीघ्र निपटाए जाने से संबंधित विभिन्न अध्युपायों की सिफारिश करते हुए, अन्य बातों के साथ, आयोग ने उच्च न्यायालयों में न्यायधीशों की संख्या में वृद्धि करने की सिफारिश की। प्रारम्भ में इस बात की जांच की गई कि क्या उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों के स्वीकृत पदों पर होने वाली रिक्तियों को भरने में हुए विलंब के परिणामस्वरूप मामलों के निपटारे में विलंब होता है। यह पाया गया कि यद्यपि वर्ष 1977 के दौरान देश के उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या 352 थी किन्तु औसतन 287 न्यायाधीश ही कार्यरत थे। इसी प्रकार से वर्ष 1976 में यद्यपि संख्या 361 थी किन्तु कार्यरत न्यायाधीशों की संख्या केवल 292 थी। स्वीकृत संख्या और कार्यरत न्यायाधीशों की संख्या में यह विषमता प्रकटत: इस तथ्य के कारण थी कि इन पदों पर होने वाली रिक्तियों को तत्काल नहीं भरा गया था। परिणाम यह निकाला गया कि विधि आयोग की सुविचरित राय में, रिक्तियों के भरे जाने में होने वाला विलंब बकाया मामलों के एकत्रित होने के लिए एक मुख्यत: सहायक कारण था। आयोग की राय में, जब कभी किसी न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति के कारण किसी रिक्ति के होने जाने की संभावना हो तभी छह मास पूर्व ही उस रिक्ति को भरने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए।[2] न्यायाधीशों की नियुक्ति की पद्धति में सुधार करने से संबंधित सिफारिशों के संक्षिप्त विवरण में विधि आयोग ने अपने पूर्ववर्ती मत को दोहराया कि उच्च न्यायालयों में सामान्य रिक्तियों की दशा में (रिक्ति भरने के लिए) आरंभिक कदम मुख्य न्यायमूर्ति के द्वारा रिक्ति की अपेक्षित तारीख से कम से कम छह मास पूर्व उठाना प्रारंभ कर दिया जाना चाहिए जिससे कि पूर्ववर्ती पदधारी के सेवा निवृत्त होने के पश्चात् बहुत देर तक उस रिक्ति के न भरे रहने की संभावना को समाप्त किया जा सके। आयोग ने यह और सिफारिश की कि सिफारिश करते समय मुख्य न्यायमूर्ति को अपने वरिष्ठतम सहयोगी से भी परामर्श करना चाहिए और मुख्य न्यायमूर्ति की ऐसी किसी भी सिफारिश को सामान्यत: स्वीकार कर लिया जाना चाहिए जिस सिफारिश के साथ उनके दो वरिष्ठतम सहयोगियों की सहमति हो।[3]

3.4 उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश की नियुक्ति के विषय में यह सिफारिश की गई थी कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को अपने तीन वरिष्ठतम सहयोगियों से परामर्श करना चाहिए और अपनी सिफारिश की संसूचना में ऐसे परामर्श के परिणाम का विनिर्दिष्ट उल्लेख करना चाहिए और अपनी सिफारिश के बारे में जिन सहयोगियों से परामर्श किया गया था उसमें से प्रत्येक सहयोगी के विचारों को भी उन संसूचना में प्रोद्धत करना चाहिए।[4] ऐसा प्रतीत होता है कि सन् 1977 से लेकर सन् 1979 के बीच भारत के मुख्य न्यायमूर्ति ने अपने दो वरिष्ठतम सहयोगियों से परामर्श करना प्रारंभ कर दिया था और तत्पश्चात् अपने इस परामर्श की प्रथा को बढ़ा कर इसमें अपने चार वरिष्ठतम सहयोगियों को शामिल कर लिया था। तत्पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्कीम आस्थगित कर दी गई थी। इस से यह विवक्षित होता है कि विधि आयोग की सिफारिश पर

1. भारत का विधि आयोग, 79वीं रिपोर्ट, पृ० 19.
2. तथैव, पृ० 20।
3. उपरोक्त पाद टिप्पण सं० 3, पृ० 32, सिफारिश सं० (2), (3) और (4).
4. तथैव, पाद टिप्पण सं० 3, पृ० 35, सिफारिश सं० (32).
5. स्रोत, विधि और न्याय मंत्री की रिपोर्ट.

तारीख 30-6-1986 को विभिन्न उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की संख्या और रिक्तियों का विवरण

क्रम सं०	उच्च न्यायालय	स्वीकृत संख्या			वास्तविक संख्या			रिक्तियां		
		स्थायी न्या०	अपर न्या०	कुल	स्थायी न्या०	अपर न्या०	कुल	स्थायी न्या०	अपर न्या०	कुल
1.	इलाहाबाद	54	6	60	45	—	45	9	6	15
2.	आन्ध्र प्रदेश	24	2	26	18	—	18	6	2	8
3.	मुम्बई	40	3	43	38	1	39	2	2	4
4.	कलकत्ता	41	—	41	38	—	38	3	—	3
5.	दिल्ली	25	2	27	22	—	22	3	2	5
6.	गुवाहाटी	8	1	9	8	—	8	—	1	1
7.	गुजरात	18	3	21	17	—	17	1	3	4
8.	हिमाचल प्रदेश	5	1	6	5	1	6	—	—	—
9.	जम्मू-कश्मीर	5	2	7	5	2	7	—	—	—
10.	कर्नाटक	24	—	24	21	—	21	3	—	8
11.	केरल	15	3	18	15	3	18	—	—	—
12.	मध्य प्रदेश	23	6	29	22	4	26	1	2	3
13.	मद्रास	25	—	25	21	—	21	4	—	4
14.	उड़ीसा	11	1	12	9	—	9	2	1	3
15.	पटना	35	—	35	29	—	29	6	—	6
16.	पंजाब और हरियाणा	23	—	23	16	—	16	7	—	7
17.	राजस्थान	21	1	22	19	1	20	2	—	2
18.	सिक्किम	3	—	3	2	—	2	1	—	1
		400	31	431	350	12	362	50	19	69

कुछ समय के लिए भागतः कार्रवाई की गई थी, यद्यपि यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि यह रिपोर्ट पूर्णतः या भागतः स्वीकार की गई थी अथवा नहीं । यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रत्येक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति ने भी इस सिफारिश को को अंगीकार कर लिया था । मुख्यतः, सिफारिश पर कार्य प्रारंभ करके नियुक्ति करने की प्रक्रिया को उस तारीख से छह मास पूर्व प्रारंभ किया जाना चाहिए जिस तारीख को रिक्ति होने की संभावना है। परिणामतः वह रिक्ति उसी दिन भर ली जाएगी जिस दिन वह घटित होती है और मामलों का निपटारा करने के लिए न्यायाधीशों की संख्या एक दिन के लिए भी अविकल रहेगी ।

3.5 यदि धारणा यह थी कि प्रचलित पद्धति सुदृढ़ है और उपांतिक परिवर्तन इस पद्धति को लचीला, प्रभावी और प्रक्रियात्मक बनाएंगे तो वर्तमान परिस्थितियों में यह पता लगाना आवश्यक है कि उक्त रिपोर्ट पेश किए जाने के लगभग आठ वर्ष पश्चात् वर्तमान वास्तविक स्थिति क्या है । यह आगे उद्धृत विवरण स्वतः ही संपूर्ण कहानी कह रहा है ।

431 न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या की तुलना में केवल 362 न्यायाधीश कार्यरत थे और 69 रिक्तियां भरी जानी शेष थीं । इसी प्रकार से 30 जून, 1986 को भारत के उच्चतम न्यायालय में 25 न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या की तुलना में 11 पदों पर रिक्तियां थीं । उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में लंबित मामलों की स्थिति निम्नलिखित सारणी में उपलब्ध है :—

तारीख 31-12-1986 और 31-12-1985 को क्रमशः उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में लंबित मामलों की स्थिति—

1. **भारत का उच्चतम न्यायालय**

तारीख 31-12-1986 को स्थिति	1,52,969

2. **उच्च न्यायालय**

तारीख 31-12-1985 को स्थिति	13,77,797

यद्यपि न्यायाधीशों ने कार्य करने की क्षमता को लगभग दुगुना करते हुए भी कार्य की बढ़ती हुई मात्रा को काबू में रखने का भरसक प्रयत्न किया फिर भी न्यायालय के डाकेट अव्यवस्थित ही बने रहे, जैसा कि नीचे उद्धृत आंकड़ों से प्रतीत होता है । सन् 1977 में प्रत्येक न्यायाधीश की मामले निपटाने की क्षमता प्रति वर्ष 742.5 थी जो 1978 में बढ़ कर 1221.1 हो गई और सन् 1979 में वह कुछ कम होकर 1130.0 आ गई फिर भी इन वर्षों के दौरान लंबित मामलों की संख्या दुगनी हो गई ।[1]

वर्ष 1980 के सुसंगत आंकड़े, जबकि सिफारिशें प्रभावी हो जानी चाहिए थीं, इस प्रकार हैं—

भारत का उच्चतम न्यायालय	79,072
उच्च न्यायालय	4,79,686

एक ही दृष्टि में यह कहा जा सकता है कि इस अवधि के दौरान लंबित मामलों की मात्रा में व्यापक वृद्धि हो गई थी, जिस वृद्धि का एक पर्याप्त भाग न्यायाधीशों की रिक्तियां भरने में हुए विलम्ब के परिणामस्वरूप था । यह देखा गया है कि औसतन रिक्तियां भरने में लगभग एक से दो वर्ष लग जाते हैं और कुछ मामलों में तो चार वर्ष भी लगे हैं ।[2]

3.6 यद्यपि रिक्तियां भरने के कार्य में हुई असफलता का कोई स्पष्टीकरण नहीं था फिर भी सरकार ने यह महसूस करते हुए कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या अपर्याप्त है, भारत के उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या को 1+17 से बढ़ा कर 1+25 कर दिया[3] और उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों के 81 अतिरिक्त पद स्वीकृत करके स्थायी न्यायाधीशों तथा स्वीकृत अपर न्यायाधीशों के पदों की संख्या को बढ़ा दिया । निम्नलिखित सारणी में भारत सरकार द्वारा स्थायी न्यायाधीशों और अपर न्यायाधीशों की बढ़ी हुई संख्या का उल्लेख किया गया है । यह स्थिति 20 मार्च, 1987 को थी ।

---

1. राजीव धवन : लिटिगेशन एक्सप्लोजन इन इण्डिया, पृ० 60 (1986).
2. प्राक्कलन समिति की 41वीं रिपोर्ट, पृ० 18.
3. उच्चतम न्यायालय (न्यायाधीशों की संख्या) संशोधन अधिनियम, 1986 जो 9 मई, 1986 को प्रवृत्त हुआ.

पद सृजित करने के विनिश्चय

(स्थिति, तारीख 20–3–1987 को)

क्रम सं० उच्च न्यायालय	स्थायी न्या०	अपर न्या०	कुल
1. इलाहाबाद	—	2	2
2. आन्ध्र प्रदेश	6	4	10
3. मुम्बई	2	10	12
4. कलकत्ता	3	5	8
5. दिल्ली	—	6	6
6. गुवाहटी	—	1	1
7. गुजरात	5	4	9
8. हिमाचल प्रदेश	—	1	1
9. जम्मू–कश्मीर	1	3	4
10. कर्नाटक	4	2	6
11. केरल	—	7	7
12. मध्य प्रदेश	—	2	2
13. पटना	4	—	4
14. पंजाब और हरियाणा	—	3	3
15. राजस्थान	—	6	6
कुल :	25	56	81

3.7 इस प्रक्रम पर (न्यायाधीशों की) रिक्तियां भरने में प्रयुक्त क्रियाविधि की कुछ विशेष बातों का उल्लेख किया जाना चाहिए। आरम्भत: वर्ष 1980 में उच्चतम न्यायालय के पांच न्यायाधीश, एक के बाद दूसरे जल्दी-जल्दी सेवानिवृत्त हो गए। उस वर्ष में प्रथम रिक्ति 1 अगस्त, 1980 को हुई, दूसरी रिक्ति 12 सितम्बर, 1980 को, तीसरी 15 अक्तूबर, 1980 को, चौथी 15 नवम्बर, 1980 को और तत्पश्चात् पांचवीं 16 जनवरी, 1981 को हुई। जनवरी 1981 तक कोई भी रिक्ति नहीं भरी गई थी। इसी प्रकार, वर्ष 1985 में भी जल्दी-जल्दी पांच रिक्तियां हुई थीं। पहली रिक्ति 9 मई, 1985 को, दूसरी 12 जुलाई, 1985 को, तीसरी 16 अगस्त, 1985 को, चौथी 1 अक्तूबर, 1985 को और अंतिम रिक्ति 22 दिसम्बर, 1985 को हुई। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या तारीख 9 मई, 1986 से भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को शामिल करते हुए 18 से बढ़ा कर 26 कर दी गई है।[1] रिक्तियों की स्थिति का विश्लेषण करने पर 31 मार्च, 1986 को 12 रिक्तियां थीं। यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि दो रिक्तियां मई, 1987 में भरी गई थीं। तथापि, यह स्मरण करने योग्य है कि दो न्यायाधीश जून, 1987 के अवकाश के दौरान सेवा-निवृत्त होने थे और दो आसीन न्यायाधीश एक आयोग के कार्य में संलग्न थे। इस प्रकार से, उच्चतम न्यायालय में वास्तविक कार्यरत न्यायाधीशों की संख्या 12 रह गई थी जो स्वीकृत संख्या का आधा है।

3.8 इस अपरिहार्य निष्कर्ष को सिद्ध करने के लिए कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में रिक्तियों को भरने में दीर्घ और अस्पष्ट विलंब है, दो पृथक्-पृथक् सारणियां बनाई गई हैं जिनमें यह दर्शित किया गया है कि 1981–86 की अवधि के दौरान उच्चतम न्यायालय में और 1980–85 के दौरान उच्च न्यायालयों में रिक्तियां किस-किस तारीख को हुई थीं और किस-किस तारीख को भरी गई थीं। ये सारणियां क्रमशः उपाबंध II और उपाबंध III में दी गई हैं।

"औसत विधि" को लागू करने पर उच्चतम न्यायालय में रिक्तियां भरने में हुआ विलंब औसतन लगभग तीन मास आता है, जैसी कि सूचना दी गई है (उपाबंध II)। इसी प्रकार, विभिन्न उच्च न्यायालयों में नियुक्ति के विषय में हुए विलंब का सारणीकरण उच्च न्यायालयों द्वारा दी गई सूचना के आधार पर किया

1. उच्चतम न्यायालय (न्यायाधीशों की संख्या) संशोधन अधिनियम, 1986 जो 9 मई, 1986 को प्रवृत्त हुआ।

गया है और उन उच्च न्यायालयों के संबंध में, जिनसे सूचनाएं प्राप्त हुई हैं, यह औसत विलंब इस प्रकार निकाला गया है :—

1. आन्ध्र प्रदेश—3 वर्ष
2. दिल्ली—6 मास
3. गुजरात, औसत नहीं निकाली जा सकती
4. हिमाचल प्रदेश—5 वर्ष, 4 महीने और 11 दिन
5. जम्मू-काश्मीर—2 वर्ष
6. कर्नाटक—1 वर्ष, 6 मास
7. केरल—1 वर्ष, 3 मास
8. मध्य प्रदेश—1 वर्ष, 6 मास
9. उड़ीसा—9 मास
10. पटना—2 वर्ष
11. पंजाब और हरियाणा, औसत नहीं निकाली जा सकती।

3.9 अब, लम्बे समय तक एक रिक्ति को न भरने के कारण हुई गंभीर असफलता के एक मामले की ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय में अपर न्यायाधीश का एक पद 10 अगस्त, 1977 से लेकर आज तक अर्थात् 9 वर्षों से अधिक की अवधि तक, रिक्त पड़ा हुआ है। जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय, जिसके न्यायाधीशों की कुल संख्या 7 है, वर्ष 1980-81 में केवल 3 न्यायाधीशों से कार्य करता रहा और वर्ष 1983-84 में केवल 4 न्यायाधीशों से काम चलाता रहा। इसी प्रकार से शिमला में हिमाचल प्रदेश के एक छोटे से उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या 5 स्थायी न्यायाधीश और 2 अपर न्यायाधीशों की है। जिसकी सर्वप्रथम रिक्ति जो भरी नहीं गई है वह सितम्बर, 1983 से है, दूसरी अगस्त, 1986 से और तीसरी मार्च, 1987 से है।

3.10 अन्य बातों को यदि छोड़ भी दें तो भी प्रत्येक न्यायाधीश से प्रति वर्ष न्यूनतम 650 नियमित मामले निपटाने की अपेक्षा की जाती है। यह उल्लेख करना आवश्यक नहीं कि यह संख्या किस प्रकार निर्धारित की गई है, सिवाय इसके कि 3 वरिष्ठतम मुख्य न्यायमूर्तियों द्वारा यह संख्या निर्धारित की गई थी।[1] अन्य किसी कारण के अलावा, यह पैमाना लागू करने पर युक्तियुक्त समय के भीतर रिक्तियां भरने में हुई असफलता ने मामलों के निपटारे को उच्चतम न्यायालय के संबंध में इस प्रकार प्रभावित किया है जैसा उपाबंध IV में उल्लेख किया गया है और उच्च न्यायालयों के संबंध में आवश्यक उल्लेख उपाबंध V में किया गया है।

3.11 इस संबंध में उच्च न्यायालयों के वर्तमान दृष्टिकोण से स्वयं को अवगत कराने के लिए और न्यायपालिका में मानव शक्ति आयोजन के विषय के विकास में भाग लेने के लिए उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को आमंत्रित करने के लिए विधि आयोग ने प्रत्येक उच्च न्यायालय को इस अनुरोध के साथ एक पत्र लिखा कि वे रिक्तियों को भरने में होने वाले विलंब के कारणों का स्वतंत्रतापूर्वक और निर्भीकतापूर्वक उल्लेख करें और यह बताएं कि विलंब किस प्रक्रम पर होता है।[2] विधि आयोग ने प्रत्येक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को विभिन्न प्रश्नों वाला एक पत्र भेजा जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रश्न भी था कि क्या विधिज्ञ परिषद् के किसी सदस्य या जिला न्यायपालिका के किसी सदस्य का (उच्च न्यायालय में नियुक्त करने के लिए) चयन करने और सिफारिश करने के विषय में इस व्यापक आलोचना के कारण कोई कठिनाई अनुभव की गई है कि **भारत संघ** बनाम **सांकल चंद हिम्मत लाल सेठ**[3] और **एस०पी० गुप्ता** बनाम **भारत संघ**[4] के मामलों में दिए गए विनिश्चय के कारण स्थानांतरित किए जाने वाले न्यायाधीश

---

1. उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों; राज्यों के मुख्य मंत्रियों और विधि मंत्रियों के सम्मेलन से उद्धत, पृ० 7.
2. देखिए उपाबंध 1.
3. ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 2308.
4. ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 149.

की सम्मति के बिना उनके स्थानांतरण की शक्ति कार्यपालिका को सौंप दी गई है। मुख्य न्यायमूर्तियों से उन मापदंडों, उस पैमाने या उन अन्य सुसंगत विचारणाओं पर भी प्रकाश डालने के लिए निवेदन किया गया था, जो उच्च न्यायालयों में न्यायाधीश के पदों पर नियुक्ति के लिए विधिज्ञ परिषद् के सदस्यों के नाम के बारे में सिफारिश करने के विनिश्चय को प्रभावित करते हैं। अन्य बातों के साथ इसी प्रश्न-पत्र से निम्नलिखित सूचना भी मांगी गई थी—(i) आय संबंधी पहलू; (ii) विधिज्ञ परिषद् में प्रतिष्ठा; (iii) जाति; (iv) आरक्षण का सिद्धांत तथा और कोई अन्य विचारणाएं जिनका किसी उम्मीदवार को चयन करने और उसकी सिफारिश करने से संबंधित विनिश्चय पर प्रभाव पड़ता है। मोटे तौर पर सर्वसम्मति का दृष्टिकोण यह था कि प्रश्नगत व्यक्ति की आय को निस्संदेह ध्यान में रखा जाता है किन्तु यह भी स्पष्ट किया गया कि यह एक मात्र मापदंड नहीं है। विधिज्ञ परिषद् में व्यक्ति की प्रतिष्ठा आम तौर पर सुसंगत कारक है और थोड़े से अल्पमत को छोड़ कर सभी ने ऐसा कहा है। मोटे तौर पर मत यह था कि जाति कोई सुसंगत कारण नहीं है—सिवाय उन मामलों को छोड़ कर जहां कि अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजातियों के किसी व्यक्ति की भर्ती के लिए प्रयास किया जाता है। इसके अंतर्गत इस विषय से संबंधित अंतिम प्रश्न भी आ जाता है।

3.12 एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह पूछा गया था कि क्या विधिज्ञ परिषद् के ऐसे किसी सदस्य ने, जिसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद प्रस्थापित किया गया था, इसलिए संकोच प्रकट किया और हिचकिचाहट दिखाई क्योंकि कार्यपालिका उसे बिना उसकी सम्मति के, उच्चतम न्यायालय के उक्त विनिश्चयों के अनुसार, एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर सकती है। 18 उच्च न्यायालयों में से 3 उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों ने अपनी इस आशंका को व्यक्त किया है कि स्थानांतरण की संभावना ने न्यायाधीश का पद स्वीकार करने के बारे में विधिज्ञ परिषद् के कुछ सदस्यों के विचार को प्रभावित किया है। कुछ अन्य न्यायमूर्तियों का यह मत है कि इस बात का उपांतिक प्रभाव है किन्तु कोई भी न्यायाधीश एक भी ऐसा विशेष मामला विनिर्दिष्ट नहीं कर सका जहां विधि व्यवसाय करने वाले किसी अधिवक्ता ने इस आशंका को व्यक्त करते हुए न्यायाधीश का पद स्वीकार करने से इंकार कर दिया हो कि वह उस पद को इसलिए स्वीकार नहीं करता, क्योंकि उसे उसकी सम्मति के बिना, किसी भी न्यायालय में स्थानांतरित किया जा सकता है।

3.13 नियुक्तियां करने में हुए विलंब से संबंधित प्रश्न के उत्तर में यह सूचना प्रकाश में आई कि विलंब साधारणतया या तो राज्य स्तर पर था या केन्द्र स्तर पर था या कभी-कभी दोनों स्तरों पर था; यद्यपि एक प्रमुख उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति ने यह कहा कि प्रायः विलंब ऐसे समुचित व्यक्ति के ढूंढने के कारण होता है जिसके लिए न्यायाधीश के पद की सिफारिश की जा सके। कम से कम एक मुख्य न्यायमूर्ति ने तो स्पष्ट रूप से यह कहा कि विलंब के अनेक कारणों में से एक कारण जो बहुत ही चिन्ताजनक और करुणाजनक है, वह राजनैतिक हस्तक्षेप है और एक अन्य न्यायमूर्ति ने यह स्पष्ट रूप से कथन किया कि रिक्ति इसलिए नहीं भरी जाती क्योंकि यह कार्य राजनैतिक संरक्षण का भाग माना जाता है और इस संरक्षण के वितरण में समय लगता है। सभी कारणों का यहां विश्लेषण किए बिना, सारी सूचना को प्रश्नवार सारणीबद्ध किया गया है और यह इस रिपोर्ट में उपाबंध VI के रूप में संलग्न है। एक मुख्य न्यायमूर्ति ने एक ऐसी बात कही जो सार्वजनिक रूप से ज्ञात है कि एक ऐसी निन्दाजनक प्रवृत्ति अब जानी-पहचानी हो गई है कि जैसे ही किसी विचाराधीन व्यक्ति के नाम का समर्थन किया जाता है या उसे प्रकाशित कर दिया जाता है तो सिफारिश किए गए व्यक्ति के विरुद्ध अनेक प्रकार के वास्तविक और काल्पनिक अभिकथन करते हुए, पत्रों की एक बाढ़-सी आ जाती है। सभी अभिकथनों की जांच करने में समय लगता है भले ही अंततः वह सब निराधार साबित हो जाते हैं।

3.14 इस बात को याद करने पर कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में किसी व्यक्ति की नियुक्ति के प्रस्ताव को आगे बढ़ाने की क्रियाविधि पेचीदा और अड़चन भरी है और इसमें लगभग 6 सांविधानिक कृत्यकारी अन्तर्वलित होते हैं, इसलिए विलंब तो इसमें अन्तर्निहित है ही। किन्तु जहां तक उच्चतम न्यायालय में नियुक्ति का संबंध है, इसमें कोई विलम्ब नहीं होना चाहिए क्योंकि नियुक्ति की शक्ति राष्ट्रपति में निहित है जो मंत्रिमंडल की सलाह पर कार्य करता है और कारबार नियमों के अनुसार विधि और न्याय मंत्री इस कार्य का भारसाधक है। अतः केवल दो सांविधानिक कृत्यकारी इस कार्य में अन्तर्वलित है अर्थात् भारत का मुख्य न्यायमूर्ति और विधि और न्याय मंत्री। यह स्वीकार करते हुए कि इस कार्य में सामान्य रीति का अनुसरण किया जाता है अर्थात् यह कि उच्चतम न्यायालय में रिक्ति भरने के लिए भारत का मुख्य

न्यायमूर्ति किसी व्यक्ति के नाम की, जो आमतौर पर उच्च न्यायालय का आसीन न्यायाधीश होता है, सिफारिश करने की प्रक्रिया प्रारम्भ करेगा; वह विधि और न्याय मंत्री को उसका नाम प्रेषित करेगा। यदि कोई बातचीत आवश्यक है तो दोनों ही दिल्ली में होते हैं और एक-दूसरे के निकट ही रहते हैं। अतः दोनों की पारस्परिक बातचीत कुछ ही समय में पूरी हो सकती है। यदि यह प्रक्रिया रिक्ति होने से तीन मास पूर्व प्रारंभ कर दी जाए, भले ही इसमें भी लंबा विचार-विमर्श चले, फिर भी यह प्रक्रिया वस्तुतः रिक्ति होने से बहुत पहले ही पूरी की जा सकती है और नियुक्ति इतने समय पूर्व की जा सकती है जिससे कि वह रिक्ति एक दिन के लिए भी खाली न रह पाएगी। इस कथन के पीछे धारणा यह है कि जिस समूह में से चयन किया जाता है वह उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का एक ऐसा सीमित समूह है, जिन्होंने किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में 5 वर्ष से अधिक की सेवा पूरी कर ली है और जिनके प्रत्यय-पत्रों के बारे में किसी प्रकार की पूछताछ करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह उच्च न्यायालय का एक आसीन न्यायाधीश है। यदि उच्च न्यायालयों में लगभग 450 न्यायाधीश हैं और चयन केवल उन व्यक्तियों तक ही सीमित किया जाता है जो इस पद के लिए अर्हित हैं और जो निकट में सेवा-निवृत्त नहीं होने वाले हैं तो ऐसी दशा में यह चयन लगभग 150 से लेकर 200 न्यायाधीशों में से ही किया जाना होता है और फिर परिसंघीय सिद्धांत को भी साधारणतया ध्यान में रखा जाता है जिसका निदेश यह है कि ऐसा चयन उन उच्च न्यायालयों तक ही सीमित होना चाहिए जिन उच्च न्यायालयों का उच्चतम न्यायालय में प्रतिनिधित्व नहीं है। प्रायः अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व का प्रश्न भी ध्यान में रखा जाता है। इस प्रकार, उच्चतम न्यायालय में नियुक्ति के लिए प्रतिभाओं का चयन इतना सीमित रह जाता है कि कई बार तो चयन की कोई गुंजाइश ही नहीं रहती और उपलब्ध व्यक्तियों को ही नियुक्त करना पड़ता है। अतः समय लगाने की कोई आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि ऐसे चयन का क्षेत्र बहुत व्यापक नहीं है और न यह असीमित व्यक्तियों के बीच से किया जाना है। यह बात भी अनजानी नहीं है कि कुछ समय से इस नई पद्धति का प्रचलन हो गया है कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और विधि और न्याय मंत्री के बीच एक प्रारम्भिक अनऔपचारिक विचार-विमर्श हो जाता है और जब सहमति हो जाती है तो एक औपचारिक प्रस्ताव पेश कर दिया जाता है। तत्पश्चात् यह प्रक्रिया तीव्र गति से आगे बढ़ेगी। फिर भी उच्चतम न्यायालय में रिक्तियां भरने में बड़ा भारी विलंब होता है और यह विलंब पूर्णतः अस्पष्टीकृत रहता है। उच्चतम न्यायालय में 1980 में हो रही रिक्तियों को भरने में लगे समय को उपाबंध II में सूचीबद्ध किया गया है।

3.15 रिक्तियां भरने में हुई असफलता सांविधानिक कर्तव्य पूरा करने में हुई असफलता के समान है। राज्य का उत्तरदायित्व न केवल पर्याप्त संख्या में न्यायालयों की स्थापना करना है अपितु इन न्यायालयों के कार्यकरण के लिए मानव शक्ति की व्यवस्था करना भी है। यह कर्तव्य संविधान द्वारा अधिरोपित किया गया है और निःसंदेह इसे पूरा करने में होने वाली असफलता को सांविधानिक कर्तव्य पूरा करने में हुई असफलता कहा जा सकता है। अन्य बातों के साथ-साथ मामलों के निपटारे का पदासीन न्यायाधीशों की संख्या से सीधा संबंध है। लंबित मामलों की बढ़ती हुई संख्या का मुख्य कारण रिक्तियों का न भरा जाना है। उपाबंध IV और V क्रमशः उच्चतम न्यायालय में और उच्च न्यायालयों में रिक्तियां भरने में वे विलंब को और मामलों के निपटारे पर इस विलंब के प्रभाव को तथा लंबित मामलों की बढ़ती हुई मात्रा को दर्शित करते हैं।

3.16 इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व यह बताना आवश्यक है कि रिक्तियों को युक्तियुक्त समय के भीतर भरने के लिए नियुक्तियां करने की कार्रवाई में असफलता ने न केवल न्यायाधीशों, न्यायविदों और मुकद्दमा करने वाली जनता का ही ध्यान आकृष्ट किया है अपितु संसद् का भी इस ओर ध्यान गया है। प्राक्कलन समिति की 31वीं रिपोर्ट में इसने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि भारत के विधि आयोग की 80वीं रिपोर्ट में दी गई विस्तृत सिफारिशों के बावजूद भी स्थिति और बिगड़ गई है तथा उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में रिक्तियां भरने का अन्तराल, इस अत्यावश्यक कार्य पर ध्यान देने में हुए विलम्ब के कारण और बढ़ गया है। रिपोर्ट में खेद सहित यह उल्लेख किया गया है कि इस कर्तव्य के लिए उत्तरदायी प्राधिकारियों द्वारा न्यायालयों में रिक्तियां भरने में हुआ विलम्ब न्यायालयों में बकाया मामलों की बढ़ती हुई गंभीर संख्या के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी है। तदनुसार, समिति ने यह सुझाव दिया कि न्यायाधीशों की नियुक्ति की वर्तमान प्रक्रिया को बदलने के लिए कुछ अन्य रीतियों और उपायों का पता लगना चाहिए क्योंकि नियुक्ति की वर्तमान क्रियाविधि न्यायाधीशों के चयन और उनकी नियुक्ति में होने वाले अतिशय

---

*पहली झलक में ही पता चलेगा कि आज भी 12 रिक्तियाँ एक वर्ष से अधिक समय से रिक्त रह गई हैं.

विलम्ब के लिए भागतः उत्तरदायी है। अन्य बातों के साथ-साथ प्राक्कलन समिति की 31वीं रिपोर्ट भी वर्तमान रिपोर्ट के लिए एक पर्याप्त औचित्य प्रदान करती है।[1]

3.17 अतः अनिवार्य निष्कर्ष यह निकलता है कि वरिष्ठ न्यायपालिका में नियुक्ति के लिए सांविधानिक उपबंधों द्वारा प्रकल्पित क्रियाविधि युक्तियुक्त समय के भीतर मानवशक्ति की व्यवस्था करने के लिए अपर्याप्त और अक्षम प्रतीत होती है। इस दिशा में आज तक का उक्त अनुभव इस दृष्टिकोण का समर्थन करते रहना सर्वथा कठिन बना देता है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति की पद्धति से संबंधित वर्तमान सांविधानिक स्कीम बुनियादी तौर पर सुदृढ़ है या यह कि इसने कुल मिला कर संतोषजनक रूप से कार्य किया है और इसमें किसी आमूल परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। एक नई विचारधारा अपरिहार्य हो गई है अन्यथा इस पद्धति के अपने ही मलबे के बोझ के नीचे दब कर नष्ट हो जाने की पूरी-पूरी संभावना है।

3.18 भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के चयन के मामले में अतिष्ठित किया जाना, न्यायाधीशों का स्थानांतरण और संविधान के अनुच्छेद 222 द्वारा प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में उच्च न्यायालयों के अपर न्यायाधीशों की पुष्टि न किया जाना ऐसी कुछ अन्य घटनाएं हैं जिन्होंने यह आशंका उत्पन्न कर दी है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता जो कि संविधान का एक महत्वपूर्ण तत्व कहा जाता है, कार्यपालिका के हाथों समाप्त हो सकती है।

3.19 संविधान के प्रारंभ से ही भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का पद ज्येष्ठता के क्रम में उनसे पश्चात्‌वर्ती व्यक्ति की प्रोन्नति द्वारा भरा जाता रहा है। अप्रैल, 1973 में इस सिद्धांत से उस समय विचलन हुआ जब कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति ने अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर अपना पद त्यागा किन्तु ज्येष्ठता क्रम में अगले न्यायाधीश को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के पद पर प्रोन्नत नहीं किया गया था। उन्हें तथा दो अन्य न्यायाधीशों को अधिष्ठित कर दिया गया था और ज्येष्ठता क्रम में चौथे न्यायाधीश को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के पद पर प्रोन्नत कर दिया गया था। विधिज्ञ परिषद् को इस बात में न्यायपालिका की स्वतंत्रता को खतरा दिखाई दिया और कुछ लोगों ने इस कार्य को अन्दर से ही संविधान को खोखला करने तथा न्यायालय की स्वतंत्रता को समाप्त करने का एक स्पष्ट प्रयास समझा। जनवरी, 1979 में पुनः न्या०ए०एन० रे के सेवा-निवृत्त होने पर ज्येष्ठता के अनुसार अगले न्यायाधीश को भी छोड़ दिया गया तथा उससे अगले न्यायाधीश को भारत का मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त किए जाने पर 1973 की घटनाओं की पुनरावृत्ति बताते हुए विवाद फिर से छिड़ गया।

3.20 भारत सरकार ने न्यायिक प्रशासन विषय पर विधि आयोग की एक पूर्ववर्ती रिपोर्ट का अवलंब लेते हुए और यह कथन करते हुए अपनी कार्रवाई की प्रतिरक्षा की कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के पद का उत्तराधिकार में जाना मात्र ज्येष्ठता के द्वारा विनियमित नहीं किया जा सकता। विधि आयोग ने यह सिफारिश की थी कि ऐसी स्वस्थ परम्परा स्थापित की जानी चाहिए जिससे कि मुख्य न्यायमूर्ति के पद से संबंधित नियुक्ति विशेष विचारण पर निर्भर करे और सामान्य क्रम में यह पद ज्येष्ठतम अवर न्यायाधीश को न दिया जाए। यदि परम्परा स्थापित हो जाती है तो यहां उस दशा में ज्येष्ठतम अवर न्यायाधीश की प्रतिष्ठा पर कोई आक्षेपऐस नहीं होगा यदि उसे मुख्य न्यायमूर्ति के पद पर नियुक्त नहीं किया जाता है आयोग ने यह भी सिफारिश की थी कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति के मामले में भी ऐसी ही परम्परा स्थापित की जानी चाहिए। जब एक बार ऐसी परम्परा स्थापित हो जाती है तो नियुक्ति करने के लिए उत्तरदायी कृत्यकारियों का यह कर्तव्य होगा कि वे इस उच्च पद के लिए युक्तियुक्त व्यक्ति का चयन करें और यदि आवश्यक हो तो, न्यायालय से बाहर के व्यक्तियों में से चयन करें।[2]

3.21 इस संविवाद के दौरान ही तत्कालीन विधि मंत्री द्वारा और भारत सरकार के एक अन्य मंत्री द्वारा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए प्रस्तावित व्यक्ति के ऐसे सामाजिक दर्शन के प्रति निर्देश किया गया जो तत्कालीन सरकार के सामाजिक दर्शन के अनुरूप हो। इस कथन के परिणामस्वरूप कटु संविवाद उत्पन्न हो गया और यह कहा गया था कि यह प्रयास 'प्रतिबद्ध न्यायपालिका' स्थापित करने का श्रीगणेश है।

---

1. उपरोक्त पाद टिप्पण सं० 9, पृ० 18-19.
2. भारत का विधि आयोग, 14वीं रिपोर्ट, पृ० 39-40.

3.22 संविधान का अनुच्छेद 222 एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के साथ परामर्श करने के पश्चात् किसी न्यायाधीश को स्थानांतरित करने की शक्ति राष्ट्रपति को प्रदान करता है। भारत के इतिहास में पहली बार विभिन्न उच्च न्यायालयों के 16 न्यायाधीशों को उन उच्च न्यायालयों से, जिनमें प्रत्येक को पहले नियुक्त किया गया था, दूसरे उच्च न्यायालयों में, वर्ष 1976 के दौरान, स्थानांतरित किया गया था। गुजरात उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश, न्या०एस०एच० सेठ ने, उन्हें गुजरात उच्च न्यायालय से आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में स्थानांतरित करने वाले आदेश की संवैधानिकता को चुनौती दी। गुजरात उच्च न्यायालय की एक पूर्ण न्यायपीठ ने उक्त आदेश को संविधानिक दृष्टि से अविधिमान्य घोषित किया[1]। भारत संघ द्वारा अपील की जाने पर, उच्चतम न्यायालय के बहुमत के द्वारा गुजरात उच्च न्यायालय के विनिश्चय को लगभग कायम रखा गया। इस विनिश्चय से यह प्रकट हुआ कि न्यायाधीश का चुन-चुन कर किया गया स्थानांतरण दांडिक प्रकृति का स्थानांतरण है और इस प्रकार के दांडिक स्थानांतरण को अनुच्छेद 222 की परिधि के बाहर अभिनिर्धारित किया गया था। इस दृष्टिकोण से यह विवाद उठ खड़ा हुआ कि क्या अनुच्छेद 222 द्वारा प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में स्थानांतरण की नीति को कायम रखा जा सकता है। यदि स्थानांतरण की नीति अन्यथा विद्यमान है तो इस नीति के कार्यान्वयन स्वरूप किया गया कोई भी स्थानांतरण कम से कम दांडिक प्रकृति का स्थानांतरण नहीं होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि सन् 1982 में किसी समय भारत सरकार ने यह नीतिगत विनिश्चय किया कि प्रत्येक उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति उस उच्च न्यायालय की अधिकारिता से बाहर का न्यायाधीश होना चाहिए। इस नीति संबंधी विनिश्चय के अनुसरण में अनेक स्थानांतरण किए गए थे। अभी भी ऐसे अनेक लोग हैं जिनकी राय है कि कार्यपालिका को प्रदत्त स्थानांतरण की शक्ति न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए खतरा है। इस पहलू पर विस्तृत चर्चा **एस०पी० गुप्ता बनाम भारत संघ**[2] के मामले में की जा चुकी है। किन्तु फिर भी इस प्रतिपादित नीति के अनुसरण में अनेक मुख्य न्यायमूर्तियों को उनके मूल उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालयों में स्थानांतरित कर दिया गया था। आज मद्रास, केरल, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, पंजाब और हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा और सिक्किम के उच्च न्यायालयों में उनकी अधिकारिता से बाहर के न्यायाधीश ही मुख्य न्यायमूर्ति हैं। नि:संदेह इस नीति का कार्यान्वयन कभी-कभी और कहीं-कहीं किया जा रहा है किन्तु मोटे तौर पर ऐसी नीति का कार्यान्वयन किया ही जा रहा है।

3.23 जब से संविधान प्रवृत्त हुआ, प्रत्येक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या में, समय-समय पर, पुनराविलोकन के अधीन रहते हुए, स्थायी न्यायाधीश और अपर न्यायाधीश होते हैं। वस्तुत: संविधान का कार्यान्वयन इस प्रकार किया जा रहा था कि नियमानुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को सर्वप्रथम अपर न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया जाता है और तदनन्तर जब स्थायी न्यायाधीश के पद में कोई रिक्ति होती है तो उसे स्थायी न्यायाधीश के रूप में पुष्ट कर दिया जाता है। यद्यपि यह कार्यान्वयन सांविधानिक आदेश के यथावत् अनुसरण में नहीं था किन्तु इन सभी वर्षों के दौरान यह एक अनिवार्य प्रथा रही है। यह विवाद्यक उस समय सामने आया जब दिल्ली उच्च न्यायालय के दो अपर न्यायाधीशों की पदावधि समाप्त हो गई और उनकी पदावधि को नवीकृत नहीं किया गया तथा परिणामत: उन्हें उच्च न्यायालय से हटा दिया गया। उनमें से एक ने भारत सरकार की इस कार्रवाई को **एस०पी० गुप्ता** बनाम **भारत संघ**[3] के मामले में चुनौती दी। इस मामले के परिणामस्वरूप एक बहुत ही रुचिकर और ज्ञानवर्धक विवाद उठ खड़ा हुआ कि अनुच्छेद 217 और अनुच्छेद 224 द्वारा प्रदत्त शक्ति का वास्तविक प्रयोग किस प्रकार किया गया है। इस जांच से यह तथ्य सामने आया कि न्यायपालिक और सरकार, दोनों द्वारा अब तक अनुसरित प्रथा सांविधानिक आदेश के बिलकुल अनुरूप नहीं थी। इसके अतिरिक्त, मुश्किल से ही तब तक ऐसा कोई मामला सामने आया था, जिसमें अपर न्यायाधीश की पुष्टि नहीं की गई थी—सिवाए ऐसे मामले को छोड़ कर जब कि उसने स्वयं ही पुष्टि न किए जाने की इच्छा प्रकट की थी। यह पहला अवसर था जबकि दिल्ली उच्च न्यायाललय के दो अपर न्यायाधीशों की पुष्टि नहीं की गई थी और उनमें से एक ने त्याग-पत्र दे दिया था। यह कहा गया था कि अपर न्यायाधीशों की पुष्टि न किया जाना ऐसे अपर न्यायाधीशों को कार्यपालिका की दया पर निर्भर

---

1. एस० एच० सेठ बनाम भारत संघ, (1976) 17 जी एल आर 1033.
2. देखिए—एस० पी० गुप्ता बनाम भारत संघ, (1981) सप्लीमेंट एस सी सी 87.

कर देगा और इससे उनकी स्वतंत्रता का पूर्णत: हनन होगा। उक्त न्यायपीठ के प्रत्येक न्यायाधीश के निर्णय में बड़े रुचिकर मत व्यक्त किए गए हैं किन्तु उन सुसंगत मतों को यहां उद्धत करने की आवश्यकता नहीं है। आम सहमति यह थी कि अपर न्यायाधीश परिवीक्षाधीन नहीं होता है और उसे अपनी आरंभिक पदावधि की समाप्ति पर अगली पदावधि के लिए उसकी नियुक्ति के लिए अपने नाम पर विचार कराए जाने का अधिकार है या जब स्थायी काडर में कोई रिक्ति होती है तो उस पर अपनी पुष्टि कराए जाने का अधिकार है। यद्यपि गत वर्षों में अपर न्यायाधीशों की पुष्टि की गई थी किन्तु अब कार्यपालिका द्वारा इस शक्ति का दावा किया जा रहा है कि न्यायपालिका अपर न्यायाधीश की पदावधि में विस्तार नहीं कर सकेगी या अपर न्यायाधीश के रूप में उसकी पुष्टि नहीं कर सकेगी। यह कहा गया है कि यह स्थिति न्यायपालिका के स्वस्थ विकास के लिए सहायक नहीं है।

3.24 संगठित विधिज्ञ परिषदों जैसे अब तक के धुंधले क्षेत्र से भी न्यायपालिका को खतरा उत्पन्न हो सकता है। विक्षुब्धकारी संभावनाओं का एक नया परिदृश्य अब सामने आ गया है। विभिन्न राज्यों में संगठित विधिज्ञ परिषदों ने न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के बहाने अनेक बार हड़ताल की है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में एक और न्यायपीठ की स्थापना की जाने के विरुद्ध इलाहाबाद उच्च न्यायालय की विधिज्ञ परिषद् द्वारा की गई हड़ताल, एक ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति न किए जाने के विरुद्ध जिसके नाम की उच्च न्यायालय में नियुक्ति के लिए सिफारिश की गई थी, गुजरात उच्च न्यायालय की विधिज्ञ परिषद् तथा संपूर्ण गुजरात के वकीलों द्वारा की गई हड़ताल, भारत के उच्चतम न्यायालय में तीन न्यायाधीशों के अतिष्ठित किए जाने के विरुद्ध हड़ताल, उच्च न्यायालय में नियुक्ति के लिए विधि सचिव की सिफारिश को प्रश्नगत करते हुए मद्रास उच्च न्यायालय की विधिज्ञ परिषद् द्वारा हड़ताल, दिल्ली उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और इसी न्यायालय के एक न्यायाधीश की नियुक्ति के प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय की विधिज्ञ परिषद् द्वारा सांकेतिक हड़ताल और दिल्ली उच्च न्यायालय की विधिज्ञ परिषद् द्वारा हड़ताल तथा कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति की पुष्टि न किए जाने के विरुद्ध गुजरात उच्च न्यायालय की विधिज्ञ परिषद् द्वारा की गई हड़ताल---ऐसी हड़तालें हैं जिनका समुचित विश्लेषण करने पर यह परिणाम प्रकट होता है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता का समर्थन करने के बहाने बार-बार हड़ताल का आश्रय लेना अंतत: न्यायपालिका के सदस्यों को विधिज्ञ परिषदों पर इतना अधिक आश्रित बना देगा कि उससे न्यायपालिका की स्वतंत्रता को क्षति पहुंचेगी।

अध्याय IV

परिवर्तन की आवश्यकता और औचित्य

4.1 "न्यायाधीशों द्वारा की जाने वाली सेवा के लिए उच्च कोटि का ज्ञान, प्रशिक्षण और चरित्र अपेक्षित है। इन गुणों को कार्य की मात्रा के अनुसार पौंड, शिलिंग और पैंस में नहीं आंका जा सकता। न्यायाधीशों से, साधारण व्यक्तियों की तुलना में, एक अत्यधिक कठोर और निर्बन्धित जीवन तथा आचरण की अपेक्षा की जाती है और यद्यपि यह बात अलिखित है, इसका बड़ी कड़ाई से पालन किया गया है। न्यायाधीशगण, एक साथ ही, विशेषाधिकार-प्राप्त और मर्यादित व्यक्ति होते हैं। इन्हें अपनी प्रतिष्ठा और आचरण को निरन्तर बनाए रखना होता है .... न्यायपीठ, विधि व्यवसाय के लिए एक मुख्य आकर्षण का केन्द्र होना चाहिए, फिर भी यह बात कुछ अब अनिश्चित सी है, और हमारे समाज को इस के लिए भारी कीमत चुकानी पड़ेगी यदि न्यायपीठ ऐसे उन्नत व्यक्तियों और उत्तम विधिक विद्वानों को जिन्हें हम उत्पन्न कर सकते हैं, आकर्षित नहीं कर सकती है और हमारे देश को भी ऐसे युग में भारी कीमत चुकानी पड़ेगी जहां कि सापेक्ष भौतिक शक्ति कम हो गई है और जहां हम उन संस्थानों को कायम नहीं रखते हैं जिनके लिए हम प्रसिद्ध हैं।[1] जब प्रारूप संविधान के वरिष्ठ न्यायपालिका से संबंधित उपबंधों पर विचार-विमर्श हो रहा था तब न्यायपालिका में कार्य करने वाले व्यक्तियों का चयन करने के लिए आनुकल्पिक माडलों के सुझाव दिए गए थे। संसार के विभिन्न भागों में विद्यमान विभिन्न माडलों का अवलम्ब लेते हुए इस निमित्त अनेक विकल्प सुझाए गए थे। डा० बी० आर० अम्बेडकर ने इस विचार-विमर्श को अंतिम रूप देते हुए भारतीय वरिष्ठ न्यायपालिका के सदस्यों के चयन के लिए चुनी गई कार्यविधि के पीछे जो उद्देश्य था उसे स्पष्ट कर दिया था। यह इस प्रकार है :

> "संविधान में इस राय के बारे में कोई मतभेद नहीं हो सकता कि हमारी न्यायपालिका में दोनों ही बातें होनी चाहिए अर्थात् यह कि यह कार्यपालिका से स्वतंत्र भी होनी चाहिए और स्वयं में भी यह सक्षम होनी चाहिए। अब प्रश्न यह कि ये दोनों उद्देश्य किस प्रकार प्राप्त किए जा सकते हैं——— मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जिन परिस्थितियों में हम आज रह रहे हैं, जहां कि उत्तरदायित्व की भावना उस सीमा तक उत्पन्न नहीं हुई है जो हम यूनाइटेड स्टेट्स में पाते हैं, इसलिए राष्ट्रपति द्वारा की जाने वाली न्यायपालिका की नियुक्तियों को, बिना किसी प्रकार के निबन्धन अथवा सीमा के, अर्थात् केवल तत्कालीन कार्यपालिका की सलाह पर, छोड़ देना खतरनाक होगा। इसी प्रकार, मुझे यह प्रतीत होता है कि ऐसी प्रत्येक नियुक्ति को जिसे कार्यपालिका करना चाहे, विधान-मंडल की सहमति के अधीन बनाना भी एक बहुत ही उचित उपबंध नहीं है। अत: इस प्रारूप-अनुच्छेद में एक मध्यम मार्ग अपनाया गया है। यह मार्ग राष्ट्रपति को नियुक्तियां करने के विषय में एक उच्चतम और अनन्य प्राधिकारी नहीं बनाता है। यह विधान-मंडल के प्रभाव को भी इसमें शामिल नहीं करता है। इस अनुच्छेद में उपबंध यह है कि इस विषय में उन व्यक्तियों का परामर्श होना चाहिए जो इस प्रकार के मामलों में उचित सलाह देने के लिए भलीभांति अर्हित हैं, और मेरी राय यह है कि इस समय इस प्रकार के उपबंध को ही पर्याप्त समझा जाना चाहिए"।[2]

भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति का उपबंध करने वाले संशोधनों को नामंजूर करते हुए डा० अम्बेडकर ने यह कहा था कि ऐसा उपबंध विवक्षित तौर पर मुख्य न्यायमूर्ति की निष्पेक्षता तथा उसके निर्णय की शुद्धता, दोनों का अवलम्ब लेता प्रतीत होता है। यह स्वीकार करते हुए कि मुख्य न्यायमूर्ति एक बहुत ही विद्वान व्यक्ति होता है, डा० अम्बेडकर ने आगे कहा कि आखिरकार मुख्य न्यायमूर्ति भी एक मनुष्य ही है जिसमें ऐसी सभी कमियां, सभी भावनाएं और सभी पूर्वाग्रह होते हैं जो एक साधारण व्यक्ति के रूप में हम सब में होते हैं, और मेरा विचार है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति के बारे में मुख्य न्यायमूर्ति को वस्तुत: वीटो का अधिकार देना मुख्य न्यायमूर्ति को एक ऐसा प्राधिकार देने की कोटि में आता है जिसे हम

---

1. विंस्टन चर्चिल का कथन जो भारत के विधि आयोग की 14वीं रिपोर्ट, जिल्द 1, पृ० 42 पर उद्धृत किया गया है.
2. संविधान सभा वादविवाद, जिल्द 8, पृ० 258.

तत्कालीन राष्ट्रपति या सरकार में निहित करने के लिए तैयार नहीं हैं।[1] संविधान सभा में सुसंगत वाद-विवाद का उल्लेख करने के पश्चात् और अनुच्छेद 124 तथा 217 एवं संविधान के संबद्ध अनुच्छेदों में प्रयुक्त भाषा को ध्यान में रखते हुए एस॰पी॰ गुप्ता वाले मामले[2] में बहुमत ने इस दलील को नामंजूर कर दिया था कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय को वरिष्ठ न्यायपालिका में कार्य करने के लिए न्यायाधीशों के चयन के विषय में प्राथमिकता दी जानी चाहिए। न्या॰ भगवती ने अपनी राय में वरिष्ठ न्यायपालिका के न्यायाधीशों की नियुक्ति की शक्ति के संदर्भ में विधिक स्थिति को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया :

> "अत: उन सांविधानिक कृत्यकारियों द्वारा जिनकी सलाह लेना अपेक्षित है, दी गई राय की अवहेलना करने और उच्च न्यायालय तथा उच्चतम में किसी न्यायाधीश की नियुक्ति के संबंध में केन्द्र सरकार को अपना विनिश्चय तब तक करने की स्वतंत्रता है जब तक कि ऐसा विनिश्चय सुसंगत विचारणाओं पर आधारित है अन्यथा असद्भाविक नहीं है। भले ही उन सभी सांविधानिक कृत्यकारियों द्वारा, जिनकी सलाह ली गई है, दी गई राय सर्वसम्मत है तो भी केन्द्र सरकार के लिए ऐसी राय के अनुसार ही कार्य करना बाध्यकर नहीं, यद्यपि तीनों ही सांविधानिक कृत्यकारियों की एकमत राय होने से इसमें भारी वजन होगा और यदि केन्द्र सरकार के द्वारा ऐसी एकमत राय के विरुद्ध नियुक्ति की जाती है तो नि:संदेह इस नियुक्ति पर इस आधार पर आक्षेप किया जा सकेगा कि यह नियुक्ति असद्भाविक है या विसंगत आधारों पर की गई है। ऐसी ही स्थिति तब भी होगी जब केन्द्र सरकार के द्वारा कोई नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सर्वसम्मत राय के विरुद्ध की जाती है। किन्तु हम नहीं समझते कि सामान्यत: केन्द्र सरकार उच्च न्यायालय में किसी न्यायाधीश की नियुक्ति उस दशा में करेगी यदि तीनों सांविधानिक कृत्यकारियों ने अपनी राय इसके विरुद्ध व्यक्त की हो। तथापि हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि अनुच्छेद 124 के खंड (2) और अनुच्छेद 217 के खंड (1) का उचित निर्वचन करने पर इन दो अनुच्छेदों के अधीन जिनसे सलाह करना आवश्यक है उन सांविधानिक कृत्यकारियों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों को सम्यक् सम्मान देने के पश्चात् और इनके विचारों पर ध्यान देने के पश्चात् उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करने या नियुक्त न करने के संबंध में अपना विनिश्चय करने की केन्द्र सरकार को स्वतंत्रता होगी तथा एकमात्र आधार जिस पर इस विनिश्चय की आलोचना की जा सकती है वह यह है कि यह विनिश्चय असद्भाविक है या विसंगत विचारणाओं पर आधारित है। जहां उन सांविधानिक कृत्यकारियों की परस्पर राय में, जिनसे परामर्श किया गया है मतभेद है वहां केन्द्र सरकार के लिए यह विनिश्चय करने की स्वतंत्रता है कि किसकी राय को स्वीकार किया जाना चाहिए और कोई नियुक्ति की जानी चाहिए अथवा नहीं[3]।"

4.2 बहुमत के इस विनिश्चय के विरुद्ध बड़ा व्यापक विरोध प्रदर्शन किया गया था। आलोचकों के मत को सम्यक् महत्व देते हुए भी, एक अखंडनीय तथ्य यह है कि बहुमत ने उस निर्वचन को स्वीकार किया जो संविधान के आदि निर्माताओं द्वारा स्पष्टत: आशयित था और जो आशय संविधान सभा के वादविवाद के प्रति निर्देश करने से ही स्पष्ट किया जा सकता था, और विशेषकर, मात्र उस बात का ही विश्लेषण न करके कि क्या कहा गया था अपितु उस बात का भी जिसका प्रस्ताव किया गया था और जिससे विनिर्दिष्टत: नामंजूर कर दिया गया था। वरिष्ठ न्यायपालिका के सदस्यों के चयन के लिए यही माडल या क्रियाविधि गत चालीस वर्षों से प्रचलन में है।

4.3 वे दो उद्देश्य जिनको प्राप्त करने के लिए विद्यमान माडल परिकल्पित किया गया था न्यायपालिका में प्रवेश पाने के लिए अनिन्द्य निष्ठा और चरित्र वाली उत्तम प्रतिभा को आकृष्ट करना था और यह कि न्यायपालिका में दोनों ही बात होनी चाहिए अर्थात् यह कार्यपालिका से स्वतंत्र होनी चाहिए और अपने आप में सक्षम भी होनी चाहिए। वादविवाद में हस्तक्षेप करते हुए प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने यह कहा था कि "यह बात महत्वपूर्ण है कि (वरिष्ठ न्यायपालिका के) ये न्यायाधीश न केवल उच्चतम कोटि के होने चाहिए अपितु देश में उच्चतम कोटि के माने भी जाने चाहिए और उच्चतम निष्ठा वाले व्यक्ति होने चाहिए और यदि आवश्यक हो तो ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो

1. संविधान सभा वादविवाद, जिल्द 8, पृ॰ 258.
2. एस॰ पी॰ गुप्ता बनाम भारत संघ, (1981) सप्लीमेंट एस सी सी 87.
3. तथैव, पृ॰ 228.

समय पड़ने पर कार्यपालिक सरकार के विरुद्ध या जो कोई भी उनके रास्ते में आए उनके विरुद्ध खड़े हो सकें।" किन्तु उच्च न्यायालय के न्यायाधीश और परिसंघीय न्यायालय के न्यायाधीश इस प्रकार के राजनैतिक कार्यों से परे होने चाहिए और राजनैतिक दलों की चालों से और शेष सभी से दूर होने चाहिए और यदि वे इस प्रकार योग्य है तो निःसंदेह, मेरा विचार है, इन्हें कार्य करते रहने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए[1]।

4.4 इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए संविधान के आदि निर्माताओं ने वरिष्ठ न्यायपालिका में कार्य करने के लिए व्यक्तियों के चयन-हेतु एक क्रियाविधि प्रकल्पित की और देश के उच्चतम कार्यपालक अधिकारी अर्थात् राष्ट्रपति को नियुक्त करने की शक्ति प्रदान की। 40 वर्ष की यह अवधि इस माडल के कार्य-निष्पादन का और इस क्रियाविधि के कार्यकरण का निर्धारण और मूल्यांकन करने के लिए एक सीमांकन रेखा के रूप में एक पर्याप्त लम्बी अवधि है। कुछ मिलाकर, यदि यह निष्कर्ष निकाला जाए कि मोटे तौर पर इस क्रियाविधि ने संतोषजनक रूप से कार्य किया है तो इसमें और कुछ करने की आवश्यकता नहीं होगी। दूसरी ओर यदि स्थिति इतनी अधिक बिगड़ गई है कि यह क्रियाविधि लगभग निष्क्रिय हो गई है तो इसे पुन: संक्रिय बनाया जाना चाहिए या ऐसा कोई आनुकल्पिक माडल तैयार किया जाना चाहिए जिसमें वर्तमान माडल की त्रुटियां न हों और उस नए माडल को ईमानदार, दक्ष, स्वतंत्र और समर्थ न्यायाधीशों का पता लगाने का कार्य प्रभावी रूप से करना चाहिए। कोई भी व्यक्ति संविधान के आदि निर्माताओं द्वारा प्रकल्पित माडल के प्रति मात्र अपना सम्मान प्रकट करके, इस बिगड़ती हुई स्थिति की अनदेखी नहीं कर सकता। संविधान के निर्माताओं ने यह कार्य सदाशयता से किया था। हो सकता है कि क्रियाविधि के कार्य-करण में निहित धारणा में अब कुछ त्रुटि आ गई हो और एक इस प्रकार से यह सारा तंत्र अस्तव्यस्त हो गया हो।

4.5 इस बात से अवगत हो जाने के पश्चात् कि वर्तमान क्रिया विधि प्रकल्पित करके संविधान के आदि निर्माता क्या प्राप्त करना चाहते थे, क्या अब ईमानदारी से यह कहा जा सकता है कि उन उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया गया है या इन्हें प्राप्त किया जा रहा है? इस बात की समीक्षा दो स्वतंत्र दृष्टकोणों से की जा सकती है। क्या यह क्रियाविधि संतोषजनक कार्य कर रही है? क्या नियुक्तियां करने के लिए राष्ट्रपति को प्रदत्त शक्ति का प्रयोग उसी प्रयोजन के लिए किया जा रहा है जिस प्रयोजन के लिए यह शक्ति प्रदान की गई थी?

4.6 किसी भी संगठित समाज में और विशेषकर एक ऐसे विकासशील समाज में, जो एक ऐसे लिखित संविधान द्वारा शासित है जिसमें विधि के शासन का दर्शन और अनतिक्रमणीय 'बिल आफ राइट्स' समाहित है अनेक प्रकार के विवाद उत्पन्न करने की सभी संभावनाएं होती हैं। संविधान के निर्माता इस संभावना से अनभिज्ञ नहीं थे। अत: बुनियादी स्तर से लेकर उच्चतम शिखर न्यायालय तक का एक समेकित न्यायालीय पिरामिडाकार ढांचा स्थापित करने के लिए संविधान में उपबंध किए गए थे। एक ऐसे मंच की व्यवस्था करने क लिए न्यायालय पद्धति प्रकल्पित की गई थी जहां सुलझाने के लिए विवादी को ले जाया जा सकता है। मानवीय असफलताओं या निर्णय की गलतियों का सुधार करने के लिए अपील अधिकारिता की व्यवस्था की गई थी। इस प्रकार की न्यायालय पद्धति स्थापित करने के पश्चात् अगला महत्वपूर्ण कदम इन न्यायालयों में कार्य करने के लिए मानवशक्ति की स्थिति का निरंतर पुनर्विलोकन करना था। कोई न्यायालय पद्धति तब तक एक रिक्त और निरर्थक ढांचा मात्र होगी जब तक कि इन न्यायालयों में कार्य करने के लिए स्वतंत्र, दक्ष, सक्षम, बुद्धिमान और अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में समर्थ न्यायाधीशों का चयन करके उन्हें नियुक्त न किया जाए। इस दूसरे उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, उच्चतम कार्यपालक अधिकारी अर्थात् भारत के राष्ट्रपति को उच्च न्यायालयों और भारत के उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों के रूप में व्यक्तियों की नियुक्ति करने की, शक्ति प्रदान की गई है। यह ऐसी शक्ति है जिसमें कर्त्तव्य भी निहित है। नियुक्ति करने की शक्ति में, नियुक्त करने का कर्त्तव्य भी निहित है। यदि किसी प्राधिकारी को शक्ति प्रदान की जाती है और वह प्राधिकारी अपना कर्त्तव्य पालन करने में असफल रहता है तो ऐसी दशा में शून्यता की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। एक विचारधारा के अनुसार राष्ट्रपति को प्रदान की गई नियुक्ति करने की शक्ति में कर्तव्य भी समाहित है और यदि राष्ट्रपति यह कर्तव्य पूरा करने में असफल होता है तो न्यायाधीशों की संख्या का पुनर्विलोकन करने और नियुक्तियां करने के लिए उसे आदेश देते हुए परमादेश का रिट जारी किया जा सकता है।[2] और फिर जब कि सांविधानिक कृत्यकारी को शक्ति प्रदान की गई है तो

---

1. उपर्युक्त पाद टिप्पण, संख्या 2, पृ० 246-247।

2. उपर्युक्त पाद टिप्पण सं० 4, पृ० 915।

इस शक्ति का प्रयोग उसी प्रयोजन के लिए किया जाना चाहिए जिस प्रयोजन के लिए वह प्रदान की गई है और ऐसी शक्ति का प्रयोग एक युक्तियुक्त रीति में किया जाना होता है जिससे यह भी विवक्षित है कि इसका प्रयोग युक्तियुक्त समय में किया जाना चाहिए। इस प्रकार से स्थिति यह है कि राष्ट्रपति को नियुक्तियां करने की शक्ति है, वह स्वयं इस दशा में स्वतः कार्रवाई नहीं कर सकता है, उसे या तो मंत्रीमण्डल के द्वारा दी गई सलाह पर या कारबार नियमों के अधीन संबद्ध मंत्री द्वारा दी गई सलाह के अधीन कार्रवाई करनी होती है, इसलिए सरकार के लिए यह एक बाध्यकर कर्तव्य बन जाता है कि वह विभिन्न उपबंधों में यथा विहित सभी सांविधानिक कृत्यकारियों के परामर्श के पश्चात् आवश्यक सिफारिशें करे और नियुक्तियां युक्तियुक्त समय के भीतर अवश्य कर दी जानी चाहिए। माडल की आधारभूत धारणाओं और क्रिया-विधि का यहां विश्लेषण किया गया है।

4.7 अब जिन प्रश्नों का सामना किया जाना है वे इस प्रकार है :— क्या यह क्रियाविधि कार्य कर रही है अथवा यह निष्क्रिय बन गई है? यदि यह निष्क्रिय बन गई है तो क्या यह असफलता उस सांविधानिक कृत्यकारी की है जिसे शक्ति प्रदान की गई है या इस क्रियाविधि की असफलता के लिए इससे बाहर के कारणों का पता लगाया जाना चाहिए? दूसरे शब्दों में, स्पष्ट प्रश्न इस प्रकार है—(1) क्या न्यायाधीशों की संख्या का बढ़ते हुए न्यायालय के डाकिटों की संख्या के अनुसार नियमित रूप से पुनर्विलोकन किया जाता है? (2) क्या इस क्रियाविधि को क्रियाशील बनाने के लिए अत्यंत बुद्धिमान, निष्कपट, निष्ठावान और चरित्रवान तथा अपने कर्तव्यों के निर्वहन में दक्ष उच्च कोटि के व्यक्तियों का चयन किया जाता है? (3) क्या न्यायधीशों की रिक्तियों को युक्तियुक्त समय में भरा जाता है जो कि राष्ट्रपति की एक बाध्यता है? दक्ष न्यायाधीशों के द्वारा युक्तियुक्त समय के भीतर विवादों का निपटारा कराए जाने के लिए सरलता से सुलभ न्यायालय उपलब्ध कराने का इस देश के प्रत्येक नागरिक का एक संवैधानिक अधिकार है। क्या इस उद्देश्य की पूर्ति हो गई है? यदि नियुक्त करने की शक्ति में नियुक्त करने का कर्तव्य भी निहित है और यदि यह दर्शित किया जा सकता है कि की गई नियुक्तियां बड़ी मन्द गति से की गई है, इनके करने में असाधारण विलंब हुआ है तथा अपेक्षित क्वालिटी की नहीं है तो न केवल इस शक्ति के केन्द्रों को अपितु क्रियाविधि को भी असफलता के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। ऐसी दशा में इस दिशा में पुनर्विचार करना एक उच्च प्राथमिक आवश्यकता है।

4.8 चार दशकों तक इस क्रियाविधि के कार्यकरण के पश्चात् इस मामले में स्थिति बहुत निराशा-जनक है और अब यह ऐसी नाजुक स्थिति में पहुंच गई है जिसने भारत के एक पूर्ववर्ती मुख्य न्यायमूर्ति को यह चेतावनी देने के लिए उत्प्रेरित किया कि न्याय प्रशासन की पद्धति ध्वस्त होने ही वाली है।[1]

4.9 इस रिपोर्ट के पूर्ववर्ती भाग में बड़े संक्षिप्त रूप में यह बताया गया है कि न्यायाधीशों की नियुक्तियां करने में असाधारण विलंब हुआ है। वरिष्ठ न्यायपालिका में मानवशक्ति का पुनर्विलोकन नियमित रूप से तथा नियमित अन्तरालों में नहीं किया जाता है। जब कभी ऐसा पुनर्विलोकन किया भी जाता है, जैसा कि भारत के उच्चतम न्यायालय के मामले में किया गया है जहां कि न्यायाधीशों की संख्या में संसद् के द्वारा चार विभिन्न अवसरों पर वृद्धि की गई है अर्थात् 1956 में (7 से बढ़ाकर 10), 1960 में (10 से बढ़ाकर 13), 1977 में (13 से बढ़ाकर 17), और 1986 में (18 से बढ़ाकर 25) किन्तु यह सब कुल मिलाकर "कागजी कार्रवाई" ही रही हैं। न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाने पर भी उचित समय पर उनका चयन और नियुक्ति करके उन्हें पदासीन नहीं किया जाता। यह बात सांख्यकीय चार्ट (देखिए उपाबंध II) से स्पष्ट हो जाती है। इसी प्रकार, उच्च न्यायालयों में स्थिति अभी भी बदतर है। उच्च न्यायालयों में रिक्तियां बड़े लम्बे समय तक नहीं भरी जाती हैं और जब कभी न्यायाधीशों की अतिरिक्त संख्या स्वीकृत की जाती है तो प्रायः नियुक्तियां करने में दो-चार वर्ष का समय बीत जाता है और तब तक न्यायाधीशों की संख्या तथा मामलों के निपटारे के बीच सीधा चोली-दामन का संबंध होने के कारण लंबित मामलों की संख्या इतनी बढ़ जाती है जिससे कि न्यायाधीशों की संख्या में और वृद्धि करना आवश्यक हो जाता है। और इस प्रकार से यह सारी व्यवस्था एक त्रुटिपूर्ण चक्र बन कर रह जाती है। इस स्थिति को सभी लोग स्वीकार करते हैं और यह बात न्यायपालिका के कार्यकरण में गंभीर अव्यवस्था उत्पन्न कर रही है। यह तथ्यात्मक स्थिति जैसे कि कार्यरत न्यायाधीशों की संख्या, निपटाए गए मामलों की संख्या और निपटाए जा सकने वाले अनुमानित मामलों की संख्या (यदि सभी रिक्तियां समय पर भर दी गई होतीं तो) के बीच संबंध दर्शित करने वाले उपाबंध

---

1. पी०एन०भगवती, "विधि दिवस", 26 नवम्बर, 1986 को दिया गया भाषण।

IV और उपाबंध V में स्पष्ट की गई है । ये स्पष्ट दर्शित करते हैं कि नियुक्तियां करने में हुई असफलता ही वरिष्ठ न्यायपालिका के कार्यकरण में पूर्ण अस्तव्यस्तता के लिए मुख्यत: उत्तरदायी है। स्थिति में अब ऐसा गतिरोध उत्पन्न हो गया है कि इस विषय पर आमूल पुनर्विचार करना अनिवार्य हो गया है।

4.10 रिक्तियां भरने में हुई असफलता अनेक प्रकार की अफवाहों को जन्म देती है जिससे विश्वसनीयता की खाई, जो कि दृष्टिगोचर हो गई है, और चौड़ी हो जाती है। जब कभी भी कोई रिक्ति समय पर नहीं भरी जाती है और जब न्यायाधीशों का चयन करने की प्रक्रिया गुप्त रूप से चलती है तो किसी के लिए भी इस बात का सही पता लगाना मुश्किल हो जाता है कि विलंब किस प्रक्रम पर हुआ है। उच्चतम न्यायालय में नियुक्तियां करने के विषय में चयन प्रक्रिया में जो दो सांविधानिक कृत्यकारी अन्तर्वलित हैं वे है भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और वास्तविक प्रयोजन के लिए सरकार के विधि और न्याय मंत्री। ये दोनों ही महानुभाव दिल्ली में होते है और बातचीत, विचार-विमर्श तथा निर्णय के लिए सरलता से परस्पर भेंट कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में अनंत पत्र व्यवहार करना एक निरर्थक अभ्यास है। प्रत्येक मुख्य न्यायमूर्ति अपने न्यायालय के कार्य को इस प्रकार व्यवस्थित करना चाहता है जिससे कि डाकेटों का प्रबंध प्रभावी रूप से हो सके। प्राय: इतिहासकार मूल्यांकन के प्रयोजन के लिए किसी न्यायालय के काल का विभाजन उस अवधि के प्रति निर्देश करके करता है जिस अवधि के लिए किसी व्यक्ति विशेष ने मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में कार्य किया हो। प्रत्येक मुख्य न्यायमूर्ति यह चाहेगा कि उसके कार्यकाल के दौरान न्यायालय ने अवसरानुकूल कार्य किया हो, उससे की गई मांगों को पूरा किया गया हो, न्यायालय में सरलता से आवेदन करने का अवसर प्रदान किया गया हो और न्यायालय के डाकेटों का इस प्रकार से प्रबंध किया गया हो जिससे कि लंबित मामलों की संख्या में कमी हो गई हो और मामलों के निपटाए जाने में कम समय लगा हो। मृत्यु अथवा त्यागपत्र के असाधारण मामले को छोड़कर, प्रत्येक मुख्य न्यायमूर्ति यह जानता है कि अगली रिक्ति कब होगी। सामान्यत: उससे यह आशा की जाती है कि वह उन रिक्तियों को भरने के लिए, जिनके रिक्त होने की संभावना है, एक या अन्य नामों की सिफारिश करके नियुक्ति करने की प्रक्रिया को समय पर प्रारंभ करेगा। वह जो प्रक्रिया प्रारंभ करेगा वह रिक्ति होने से पूर्व ही करेगा। इस प्रक्रिया का कार्यक्षेत्र उच्च न्यायालयों के 200 से लेकर 250 न्यायाधीशों तक ही सीमित है। वह परिसंघीय सिद्धांत को और अंशत: सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व को भी ध्यान में रखता है। इस परिसीमा को छोड़कर, उसे स्वतंत्र और अनिर्बन्धित चयन करने का अधिकार है। संबद्ध व्यक्ति का आत्म परिचय विसंगत है क्योंकि जिस व्यक्ति के नाम की सिफारिश की जाती है वह 5 वर्ष से अधिक की अवधि से उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य कर रहा होता है। जिस भी क्षण वह किसी नाम का चयन करने और उसकी सिफारिश करने का निर्णय लेता है उसी क्षण वह इस नाम को विधि और न्याय मंत्री के पास भेज सकता है। इसके तुरन्त पश्चात् विचार-विमर्श किया जा सकता है और इस प्रकार से नियुक्ति की प्रक्रिया, रिक्ति होने के बहुत समय पूर्व पूरी की जा सकती है। यह सर्वविदित बात है कि ऐसा नहीं हो रहा है और यह बात अखंडनीय कटु सत्य है (देखिए उपाबंध II)। अब जैसा कि ऊपर सुझाव दिया गया है, मुख्य न्यायमूर्ति रिक्ति भरने के लिए आतुर होगा। इसका अनिवार्य निष्कर्ष यह है कि इस सारी प्रक्रिया की असफलता का केन्द्र, विधि और न्याय मंत्रालय में है। यह बात इस कथन से भी सिद्ध हो जाती है जो भारत के एक पूर्ववर्ती मुख्य न्यायमूर्ति ने अपना कार्यभार सौंपने के तुरन्त पश्चात् साफ-साफ कही :

> "सरकार के पास किसी कार्य में विलंब करने की व्यापक शक्ति है। मैं आपको बताता हूं कि क्या होता है। मैं यह कहता हूं कि अमुक व्यक्ति को मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त किया जाना चाहिए। सरकार के पास एक कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त करने की शक्ति है। सरकार कहती है 'हम आपके विरुद्ध कुछ नहीं कर रहे हैं, किन्तु यह देखिए कि वह व्यक्ति नियुक्त किए जाने के योग्य है। आओ हम उस पर विचार करें'। अब आप यह देखिए कि ऐसे व्यक्ति को 6 मास, 8 मास, 1 वर्ष, 2 वर्ष तक कार्यकारी न्यायमूर्ति बनाए रखा जाता है ; कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्तियों को तो 3 वर्ष तक के लिए भी बनाए रखा गया है। ऐसी स्थिति में, मैं देख रहा हूं कि प्रशासन के हाथों उच्च न्यायालय को गंभीर क्षति हो रही है। अब आप ही बताएं कि मैं क्या कर सकता हूं? मुझे हार माननी ही पड़ती है। मुझे हार इसलिए नहीं माननी पड़ती क्योंकि मैं सरकार के दबाव के कारण झुक जाता हूं, अपितु इस संस्था के हित में मुझे हार माननी पड़ती है। अन्यथा होता यह है :—मान लीजिए कि मेरे और सरकार के बीच उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों में कुछ नियुक्तियों के बारे में सहमति नहीं होती तो इसका परिणाम यह होता है कि कोई भी नियुक्तियां नहीं की

जाती हैं। जैसा कि मैंने बताया श्रीमती गांधी ने मेरी सिफारिश को कभी नामंजूर नहीं किया......असल में सरकार के पास हर प्रकार का शस्त्र है। सरकार आप से मतभेद तो नहीं रखती किन्तु आपसे सहमत भी नहीं होती। इस प्रकार रिक्तियां बिना भरे ही पड़ी रहती हैं"।[1]

इसके अतिरिक्त, चयन की प्रक्रिया को नितांत गुप्त रखा जाता है। तथापि, एक बात का उल्लेख कर दिया जाना चाहिए कि अभी हाल ही में विधि और न्याय मंत्री ने संसद् में यह कहा है कि उच्चतम न्यायालय में कम से कम 12 रिक्तियां भरने के बारे में उस समय तक मुख्य न्यायमूर्ति ने अपनी कोई सिफारिशें नहीं भेजी हैं।[2]

4.11 उच्च न्यायालय में नियुक्ति के विषय में उस केन्द्र का निश्चित रूप से पता लगाना कि बिलंब कहां होता है, किंचित कठिन है क्योंकि ऐसी नियुक्ति से संबंधित प्रस्ताव पर कार्रवाई करने के विषय में शक्ति के पांच केन्द्र अन्तर्वलित हैं। सामान्यतः, आपवादात्मक मामलों को छोड़कर, संबंधित उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति एक सिफारिश का शुभारंभ करता है। यह सिफारिश राज्य के राज्यपाल को भेजी जाती है राज्य का मुख्य मंत्री परामर्श में सम्मिलित होता है। तत्पश्चात् यह सिफारिश भारत सरकार के विधि और न्याय मंत्री को भेजी जाती है। यह मंत्रालय इस सिफारिश को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के पास भेजता है और अंततः मंत्रालय प्रस्ताव तैयार करता है, प्रधान मंत्री के माध्यम से इस पर कार्रवाई करता है और राष्ट्रपति नियुक्ति करता है। ऐसे मामले अज्ञात नहीं हैं जहां कि मुख्य मंत्रियों ने प्रस्तावों को विधि और न्याय मंत्रालय को न भेजकर प्रस्ताव ही समाप्त कर दिया है।[3] ऐसे भी मामलों का पता चला है जहां उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति ने, राज्य के राज्यपाल और मुख्य मंत्री ने तथा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति ने एक सिफारिश से सहमति प्रकट कर दी थी किन्तु उस व्यक्ति को जिसके बारे में सिफारिश की गई थी नियुक्त नहीं किया गया था और इस प्रकार नियुक्त न किए जाने का कारण कभी संसूचित नहीं किया था।[4] अतः उपरोक्त प्रक्रमों में से किसी एक प्रक्रम पर विलंब हो सकता है किन्तु विलंब बहुत ही भयानक होता है जैसा कि उपाबंध II और III की सारणियों में दिए गए सांख्यिकी से सिद्ध होता है। अतः इस अखंडनीय तथ्यों से यह अनुमान निकाला जा सकता है कि वरिष्ठ उच्च न्यायपालिका में नियुक्ति की यह क्रिया विधि निष्क्रिय और जड़ हो चुकी है, जिसके परिणामस्वरूप रिक्तियां बड़े दीर्घ समय तक नहीं भरी जाती, जिससे वरिष्ठ न्यायपालिका के कार्यकरण में गंभीर अव्यवस्था हो जाती है।

4.12 वर्तमान पद्धति की असफलता पर प्रकाश डालने के पश्चात् अब एक नए माडल को प्राप्त करने के लिए अनुसंधान का क्षेत्र बढ़ाया जाएगा। यह अनुसंधान निष्पक्ष, पूर्वाग्रह रहित और पूर्णतः निर्विरोध होना चाहिए। अतः आयोग इस बात की जानकारी के लिए संसार के अन्य देशों से यह जानकारी एकत्रित करेगा कि क्या संसार के किसी देश में विद्यमान किसी माडल से उद्देश्य की प्राप्ति हो सकती है या ऐसे किसी माडल का भारतीयकरण सहायक होगा या पूर्णतः नया माडल ही प्रकल्पित करना पड़ेगा।

1. वाई०बी०चन्द्रचूड़ का कथन जो आर० के० हेगड़े की पुस्तक "दि जूडिशियरी टुडे : एप्लीफार कोलेजियम" पृ० 51 पर उद्धृत किया गया है।
2. विधि और न्याय मंत्री श्री अशोक सेन का कथन जो 10 मार्च, 1987 को लोक सभा में एक प्रश्न के उत्तर में किया गया।
3. उपरोक्त पाद टिप्पण सं० 4।
4. देखिए उपाबंध VI प्रश्न, 8, गुजरात उच्च न्यायालय।

अध्याय V

विश्व पर एक दृष्टि

5.1 एक नए माडल की खोज अनिवार्यतः विश्व के विभिन्न देशों में प्रचलित माडलों पर एक विहंगम दृष्टिपात करने के लिए प्रेरित करती हैं। विश्व में चारों ओर विभिन्न माडलों की खोज करते समय हमारी विचारधारा निष्पक्ष, पूर्वाग्रहरहित अथवा पूर्वाभिरूचिरहित होनी चाहिए। किसी माडल की पूर्णतः अनदेखी कतई नहीं की जानी चाहिए। हो सकता है कि कोई माडल विशेष, भारत जैसे देश के लिए उपयुक्त न हो। कोई भी नया माडल ऐसा होना चाहिए जो भारत जैसे विकासशील देश में न्याय की मांग करने वाले नागरिकों की आवश्यकता के लिए उपयुक्त हो जहां कि न्याय की मांग करने वाले नागरिकों की एक बड़ी संख्या समाज के अशिक्षित अथवा अर्धशिक्षित वर्ग से आती है। जब कोई अपने विचार को उपलब्ध माडलों से अनुप्रमाणित करना चाहे तो विश्व के किसी भाग के किसी माडल विशेष के प्रति कोई पूर्वाशंका नहीं होनी चाहिए। तथापि, यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक देश ने अपना माडल नए सिरे से प्रकल्पि किया होगा या अपनी अपेक्षाओं के अनुरूप ऐतिहासिक विकास के द्वारा, प्रकल्पित किया होगा। अतः माडल का चयन करते समय अन्य बातों को भी ध्यान में रखना पड़ेगा जैसे कि समाज के विकास का स्तर, समाज में साक्षरता का प्रतिशत, न्याय करने वाली संस्था की प्रति व्यक्ति आवश्यकता, न्याय प्रदान करने की सेवा के लिए व्यय वहन करने के बारे में समाज के वर्ग की क्षमता तथा अन्य संबन्धित बातें। यही साधारण पृष्ठभूमि होगी जिसके भीतर नए माडल की खोज की जा सकती है।

5.2 न्यायाधीशों के चयन की रीति में, संसार भर में प्रयुक्त दो ही ज्ञात पद्धतियां है अर्थात् नाम-निर्देशन और चयन की पद्धतियां। कुछ देशों ने दोनों ही पद्धतियों को अपनाया है जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका में है। अमेरिका में दोनों ही पद्धतियां विभिन्न स्तरों पर कार्य कर रही हैं। यूनाइटेड किंगडम में न्यायाधीशों का चयन करने की नामनिर्देशन ही एकमात्र ज्ञात पद्धति है। सोवियत गणराज्य में और पूर्वी महाद्वीपों के कुछ देशों में जिन्होंने सोवियत माडल को अंगीकार किया है, न्यायाधीशों के चयन के लिए "निर्वाचन सिद्धांत" सभी स्तरों पर लागू किया जाता है तथा "पीपुल्स असेसर्स" भी वहां हैं जो सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए न्यायाधीश कहलाते हैं। जहां नामनिर्देशन का सिद्धांत अंकीकृत किया गया है वहां न्यायाधीशों का नामनिर्देशन करने के लिए नामनिर्देशन की शक्ति को विभिन्न निकायों में वितरित किया गया है। एक संबंधित प्रश्न यह भी है कि क्या न्यायाधीशों को, जैसा कि फ्रांस में है "कैरियर सर्विस" का सदस्य होना चाहिए या जैसा कि इंग्लैंड में है, वकीलों के एक विशेष समूह से उनका चयन किया जाना चाहिए या जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका में है, साधारणतः विधि-व्यवसाय के व्यक्तियों में से नामनिर्देशन के माध्यम से उनका चयन किया जाना चाहिए।[1]

भाग 1

संयुक्त राज्य अमेरिका

5.3 संयुक्त राज्य अमेरिका के 50 विभिन्न राज्यों में "28,000 सर्किट न्यायाधीशों" की भर्ती के लिए 6 विभिन्न पद्धतियां प्रचलित हैं। ये पद्धतियां हैं: दलीय निर्वाचन, निर्दलीय निर्वाचन, न्यायिक पद्धति के एक या अधिक स्तरों पर गुणागुण के आधार पर चयन, शासकीय नियुक्तियां, विधायी नियुक्ति तथा आसीन न्यायाधीश द्वारा चयन। सभी परिसंघीय न्यायाधीश केवल नाम निर्देशन द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।[2]

5.4 संयुक्त राज्य अमेरिका में परिसंघीय न्यायपालिका के सभी न्यायाधीश सिनेट के साधारण बहुमत द्वारा पुष्टि के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। किसी न्यायाधीश का चयन

---

1. एच०जे० एब्राहिम "दि जुडिशियल प्रोसेस", पृ० 22 (5 वां संस्करण, 1986)।

2. तथैव, पृ० 23।

करने और नामनिर्देशन करने के लिए राष्ट्रपति का उत्तरदायित्व प्राय: मोटेतौर पर एटर्नी जनरल और उप-एटर्नी जनरल को प्रत्यायोजित किया गया है। रीगन प्रशासन ने राष्ट्रपति परिषद् की अध्यक्षता के अधीन एक औपचारिक समिति स्थापित की है जिसमें एटर्नी जनरल के अलावा "व्हाइट हाऊस" के न्याय विभाग के सात अन्य उच्च अधिकारी होते हैं। यह समिति रिक्तियों के लिए सिफारिशों की समीक्षा करती है, इन सिफारिशों को जांच के लिए फैडरल ब्यूरो आफ इन्वेस्टीगेशन के सुपुर्द करती है और अमेरिकन बार एसोसिएशन द्वारा निर्णय के लिए भी प्रस्तुत करती है और तत्पश्चात् ये सिफारिशें राष्ट्रपति को भेजी जाती हैं।

5.5 सिनेट द्वारा इन सिफारिशों के पारित किए जाने के लिए, नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति के नाम का अनुमोदन उसके अपने राज्य के सिनेटर द्वारा भी किया जाना चाहिए और यदि वह उसके नाम का अनुमोदन नहीं करता है तो सिनेट भ्रातृत्व के तत्प्रतिशत सौजन्य के रूप में नामनिर्देशन को नामंजूर कर देती है। अमेरिकन बार एसोसिएशन ने परिसंघीय न्यायपालिका के लिए चयन की प्रक्रिया में भाग लेने हेतु चौदह (14) सदस्यों की एक समिति की स्थापना की है। समयपर्यन्त यह समिति नामनिर्देशन प्रक्रिया के महत्वपूर्ण पारिणामिक कार्यक्रमों में एक शक्तिशाली और सम्मानजनक कारक बन गई है और कम से कम सुप्रीमकोर्ट के स्तर से नीचे इसका मत बहुत शक्तिशाली है। यह समिति परिसंघीय न्यायपालिका में नामनिर्देशन के लिए नामों का सुझाव नहीं देती किन्तु इसकी भूमिका वास्तविक और प्रबल नामनिर्देशितियों की अर्हताओं का मूल्यांकन करने तक सीमित होती है। जिस नामनिर्देशिती को यह समिति "अर्हित नहीं है" अभिनिर्धारित करती है उसका नाम आमतौर पर न्याय विभाग द्वारा अनुमोदित नहीं किया जाता है।[1]

5.6 राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशन और सिनेट द्वारा उसकी पुष्टि--इन दोनों में राजनीतिक विचारणाएं अन्तर्वलित होती हैं, यद्यपि राष्ट्रपति न्यायपालिका के सदस्यों को नामनिर्दिष्ट करने का प्रयत्न राजनीतिक विचारणाओं के आधार पर नहीं करता है इस प्रकार अमेरिकन बार एसोसिएशन की यह सम समिति सामान्यत: योग्यता और श्रेष्ठता पर अपना ध्यान केन्द्रित करती। यह सब कुछ कहने के पश्चात् यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि फिर भी राजनीतिक दबावों का बोलबाला रहता है और इन दबावों की अवहेलना, नियुक्ति प्राधिकारी केवल खतरा मोल लेकर ही कर सकता है।[2]

5.7 संयुक्त राज्य अमेरिका के अधिकांश राज्यों में न्यायाधीशों का निर्वाचन प्रचलित है और अभी भी बहुत व्यापक है। निर्वाचन के लिए दो निर्वाचन क्षेत्र होते हैं। वहां न्यायाधीश या तो निर्वाचक मंडल द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं या विधान-मंडल द्वारा। संबंधित व्यक्ति या तो दलीय टिकटों पर या निर्दलीय टिकटों के आधार पर निर्वाचन लड़ सकते हैं। अधिकांश निर्वाचित न्यायाधीशों के कार्यकाल की अवधि औसतन 6 से 10 वर्ष होती है, कुछ के लिए यह अवधि 15 वर्ष तक की होती है और शेष के लिए आजीवन।

5.8 कुछ राज्यों में राज्यों के लिए न्यायाधीश चुनते समय निर्वाचक और नामनिर्देशक पद्धतियों के बीच एक सामानजस्य स्थापित करने का रुचिकर प्रयास किया गया है। इस सामानजस्य की प्रकल्पना राजनैतिक प्रभाव को कम करने के लिए और लोकप्रिय नियंत्रण के तत्व को कायम रखकर कुछ हद तक सुरक्षा प्रदान करने के लिए की गई है।[3]

5.9 सुप्रसिद्ध "केलिफोरनिया प्लान" (योजना) की यहां संक्षेप में समीक्षा की जा सकती है।[4] यह योजना केवल उच्चतम न्यायालय और अपील न्यायालय के न्यायाधीशों को ही लागू होती है (विचारण न्यायालयों की नियुक्तियां राज्यपाल के विवेकाधिकार में होती हैं)। राज्यपाल न्यायिक नियुक्तियां संबंधी आयोग को एक व्यक्ति का नामनिर्देशन करता है। इस आयोग में राज्य के उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति, संबद्ध क्षेत्र के अपील न्यायालय का पीठासीन न्यायाधीश और महान्यायवादी (अटर्नी जनरल) होते हैं। यदि यह आयोग अनुमोदन कर देता है तो नियुक्त किया गया व्यक्ति अगले साधारण निर्वाचन तक ही नियुक्त किया गया समझा जाता है (किन्तु यह नियुक्ति एक वर्ष से कम नहीं होती)। उस अवधि के अन्त

1. तथैव, पृ० 24-28।
2. तथैव, पृ० 29।
3. तथैव, पृ० 35।
4. तथैव पृ० 36-38।

मे, नामनिर्दिष्ट व्यक्ति अपने पद पर बारह वर्ष की सम्पूर्ण अवधि के लिए साधारण निर्वाचन में खड़ा होता है, उस निर्वाचन में अकेले उसका नाम एक निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में होता है। पदावधियों की संख्या की कोई सीमा नहीं है जिसकी कोई सफल उम्मीदवार अपेक्षा कर सके। यदि निर्वाचक-मंडल का उत्तर नकारात्मक है तो राज्यपाल उसके उत्तराधिकारी को उसी रीति से नामनिर्देशन करेगा और उसे भी अन्ततः निर्वाचक-मंडल के समक्ष जाना पड़ेगा। अनुमोदन का अंतिम भार जनता पर होता है अत : उसे उम्मीदवार के बारे में सभी बातें जान लेनी चाहिए और कम से कम ऐसा करना उसका कर्तव्य भी है।

5.10 इसी प्रकार से, "मिसोरी प्लान" (योजना) की समीक्षा भी संक्षेप में की जानी चाहिए।[1] यह योजना मिसोरी उच्चतम न्यायालय, मिसोरी राज्य के अन्य अपील न्यायालयों के न्यायाधीशों, सेंट लुई राज्य के सर्किट और प्रोबेट न्यायालयों के न्यायाधीशों तथा जैक्सन काऊन्टी और सेंट लुई के 'संशोधन न्यायालय' के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए आज्ञापक है। इस योजना के अन्तर्गत विभिन्न न्यायालय स्तरों पर कार्य करने वाला 'मिसोरी अपील आयोग' न्यायाधीश के प्रत्येक रिक्त पद के लिए तीन उम्मीदवारों का चयन करता है। इस राज्य के उच्चतम न्यायालय और अपील न्यायालय के संबंध में इस आयोग में राज्य के उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति अध्यक्ष होता है और राज्य की विधिज्ञ परिषद् द्वारा निर्वाचित तीन वकील तीनों अपील न्यायालयों की विधिज्ञ परिषदों में से प्रत्येक से एक एक वकील और तीनों अपील न्यायालय जिलों में प्रत्येक से राज्यपाल द्वारा नियुक्त ऐसे तीन नागरिक जो विधिज्ञ परिषद् के सदस्य नहीं हैं, सम्मिलित होते हैं। सर्किट न्यायालय तथा अवर न्यायालय के न्यायाधीशों से संबंधित आयोग में उस जिले के अपील न्यायालय का पीठासीन न्यायाधीश होता है जिसमें सर्किट न्यायालय स्थित है, संबंधित सर्किट में निवास करने वाले (परिषद् के) सदस्यों के द्वारा निर्वाचित विधिज्ञ परिषद् के दो सदस्य होते हैं और इसी प्रकार, निवासी नागरिकों में से दो सदस्य होते हैं जो राज्यपाल द्वारा नियुक्त किए जाते हैं, किन्तु विधिज्ञ परिषद् के सदस्य नहीं होते हैं। इन आयोगों के सदस्य 6 वर्ष की भिन्न-भिन्न समय की पदावधि के लिए अभिहित किए जाते हैं, जिसमें बारी-बारी से एक वर्ष छोड़कर परिवर्तन किया जाता है। राज्यपाल की पदावधि चार वर्ष की होती है और वह केवल एक बार और पद धारण कर सकता है। तदनुसार ऐसा संभव नहीं है कि वह सभी साधारण सदस्यों को नियुक्त करेगा और अधिक निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए, आयोग के सदस्यों को न तो कोई सार्वजनिक पद धारण करने दिया जाता है और न किसी राजनैतिक दल में कोई शासकीय पद। मिसोरी के राज्यपाल के लिए अपील आयोग द्वारा चयन किए गए तीन व्यक्तियों में से एक व्यक्ति को चुनना और उसे अगले साधारण निर्वाचन तक नियुक्त करना बाध्यकर है। इस परिवीक्षाधीन अवधि के पश्चात् नियुक्त किए गए व्यक्ति का अनुमोदन निर्वाचक मंडल द्वारा किया जाना आवश्यक है।

5.11 अत: इस मिसोरी योजना में निर्वाचक-मंडल के प्रति उत्तरदायित्व से संबंधित प्रजातांत्रिक भावना, न्यायिक पद के लिए अर्हित उम्मीदवारों का चयन करने की एक बुद्धिमत्तापूर्ण पद्धति, दोनों ही, सम्मिलित हैं। अपने अभिलेख के आधार पर निर्वाचक मंडल का सामना करने की आवश्यकता, नियुक्त किए गए न्यायाधीश को विवेकशीलता के लिए प्रेरणा प्रदान करती है और यह तथ्य कि वह अपने ऐसे प्रतिद्वन्द्वी की तुलना में जो किसी विनिर्दिष्ट राजनैतिक दल से संबद्ध है अपने व्यक्तिगत अभिलेख के आधार पर नियुक्त किया गया है, न्यायालयों को राजनीति के अत्यंत दूषित पहलुओं से बाहर ले जाने का अधिक कार्य करता है। दूसरी ओर यह भय कि निर्वाचक-मंडल की दृष्टि में उत्तम कीर्तिमान स्थापित करने की जागरूकता लोकप्रिय किन्तु निर्बल निर्णयों को जन्म देगी, क्रियागत मिसोरी प्लान के परिणामों के आधार पर निराधार साबित हुआ है।

यूनाइटेड किंगडम

5.12 यूनाइटेड किंगडम में राजनीति से जरा सा भी प्रत्यक्षतः प्रभावित व्यक्ति, "क्राऊन" द्वारा न्यायाधीश पदाविहित किए जाते हैं। व्यावहारिकतः ये न्यायाधीश लार्ड चान्सलर की पसंद के व्यक्ति होते हैं, लार्ड चान्सलर सरकार का एक वरिष्ठ विधि-सदस्य होता है जो न्यायाधीशों के चयन के बारे में इंग्लैंड की महारानी का मुख्य सलाहकार होता है चूंकि लार्ड चान्सलर का चयन प्रधान मंत्री द्वारा किया जाता है इसलिए न्यायाधीशों के चयन में प्रधान मंत्री का अप्रत्यक्ष हाथ अवश्य होता है—विशेषकर मध्यम और

1. तथैव, पृ० 38-40।

उच्च स्तर पर। वस्तुतः नियुक्त किए गए व्यक्तियों को प्रधान मंत्री पदाविहित करता है किन्तु वह लार्ड चान्सलर की सलाह पर ही ऐसा करता है। औपचारिकतः महारानी ही वस्तुतः नियुक्ति के कमीशन आदेश जारी करती हैं।

5.13 किन्तु लार्ड चान्सलर स्वयं यूनाइटेड किंगडम के न्यायिक ढांचे का ऐसा प्रमुख है जिसे राजनैतिक तौर पर पदाविहित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, लार्ड चान्सलर 'जस्टिस आफ पीस' की रैंक के न्यायिक पदाधिकारी से लेकर ब्रिटिश न्यायपालिका के उच्च पदों तक की सभी नियुक्तियों के बारे में सलाह देता है। इंग्लैंड का लार्ड चान्सलर हाऊस आफ लार्ड्स की अध्यक्षता करता है। वह मंत्रिमंडल का एक सदस्य है। वह न्यायपालिका का प्रमुख है। यह एक असाधारण संयोग है। इंग्लैंड के लार्ड चान्सलर के व्यक्तित्व में कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका का तिहरा कार्य समाहित है। जिसे प्रायः शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का पूर्ण खंडन कहा जाता हैं।[1]

5.14 लार्ड चान्सलर को अपेक्षाकृत एक छोटे और सीमित समूह में से इंग्लैंड और वेल्स के लगभग 500 पूर्णकालिक न्यायाधीशों का चयन करना होता है। इससे पूर्व चूंकि वह विधिज्ञ परिषद् का एक सदस्य भी होता है इसलिए वह कुछ विद्वान विधिवेत्ताओं का और उनके राजनैतिक झुकाओं को भी जानता है किन्तु यह कहा जाता है कि जब किसी अन्य राजनैतिक विचारधारा के सदस्य भी एक सक्षम न्यायाधीश बनने की सक्षमता दिखलाते हैं तो भी वह निःसंदेह उनकी नियुक्तियां करने में दलीय भावनाओं को त्यागने में संकोच नहीं करेगा। व्यक्तिगत संपर्क की कमी भी उसके रास्ते में आड़े नहीं आती क्योंकि वह ऐसे वरिष्ठ न्यायाधीशों से भी परामर्श कर सकेगा जिन्हें उनके समक्ष पेश होने वाले विधिज्ञ परिषद् के प्रसिद्ध सदस्यों के एवं निष्पक्ष रूप का ज्ञान अवश्य होगा, फिर भी न तो उनकी सहमति और न उनकी पूर्वानुमति की ही कोई अनिवार्यता है। यह कहा जाता है कि किसी भी न्यायिक पद के लिए संयाचना करने या लार्ड चान्सलर पर कोई राजनैतिक दबाव डालने का जोरदार शब्दों में उपहास किया जाता है। लगभग आधी शताब्दी से अधिक अवधि में की गई सभी नियुक्तियों की विवेचना करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला गया था कि सन् 1907 से लेकर अब तक न्यायिक चयन की प्रतिक्रिया में राजनैतिक विचारणाओं का मुश्किल से ही कोई समावेश हुआ है।[2] लार्ड चालन्सर, साधारण अपील के लार्ड, लार्ड मुख्य न्यायमूर्ति, मास्टर आफ रोल्स, पोबेट, डाइवोर्स और एडमिरेलिटी प्रभाग के पीठासीन न्यायाधीश और अपील न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्तियां प्रधान मंत्री की सिफारिश और सलाह पर महारानी द्वारा की जाती हैं, जबकि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, काउन्टी न्यायालयों के न्यायाधीशों, 'क्वार्टर सेशन' के सभापति, रिकार्डस आफ बरो और महानगरीय वैतनिक मैजिस्ट्रेटों की नियुक्तियां लार्ड चान्सलर की सिफारिश पर की जाती है। लार्ड चान्सलर ''जस्टिसेज आफ पीस' भी नामनिर्दिष्ट करता है। यहां यह स्पष्ट निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इंग्लैंड में सभी स्तरों पर न्यायाधीशों की नियुक्ति करने की शक्ति अनन्यतः कार्यपालिका में निहित है।[3]

5.15 यूनाइटेड किंगडम में न्यायिक नियुक्तियां की विवेचना करते समय लार्ड जाबिट ने यह मत व्यक्त किया कि 'यदि मैंने बहुत सी अयोग्य नियुक्तियां की होती तो उस समय मुझे कैसा महसूस होता जबकि अगले ही दिन भोजन के लिए 'इन' में जाते समय मुझे कटाक्ष दृष्टियों/भृकुटियों का सामना करना पड़ता।[4] यद्यपि विधिज्ञ परिषदें और न्यायालय न्यायाधीशों के चयन के लिए उत्तरदायी नहीं है, जो चयन अंततः परम्परा के अनुसार लार्ड चालन्सर का उत्तरदायित्व है, फिर भी विधिज्ञ परिषदें और न्यायालय चयन की प्रक्रिया में बहुत सी महत्वपूर्ण भूमिका निभातें हैं और इसलिए गुणवान अर्थात् व्यवसायिक उत्तरदायित्व वाले व्यक्तियों की नियुक्ति के लिए श्रेय इन्हें दिया जाना चाहिए (या, यथास्थिति, इन्हें भी उत्तरदायी समझा जाना चाहिए)।[5]

---

1. तथैव, पृ० 33।
2. आर० जैक्सन "स्टेडी आन दि मशीनरी आफ जस्टिस इंग्लैण्ड" एस० पी० गुप्त बनाम भारत संघ (1981), सप्लीमेंट, एस सी सी, पृ० 87 वाले मामले में यथा उद्धृत।
3. एच० आर० दुबे "दि जुडिशियल सिस्टम आफ इंडिया एंड सम फारेन कंट्रोल", पृ० 420।
4. शिमन सेट्रीट, "जजेज आन ट्रायल: एस्टडी आफ दि अपायन्टमेंट एण्ड एकाउन्टेबिलिटी आफ दि इंगलिश जुडिशीयरी", पृ० 52 (1976)।
5. तथैव।

5.16 तथापि, समय की कसौटी पर खरे उतरे इस माडल पर नए सिरे से विचार किया जा रहा है। सन् 1972 में न्यायपालिका से संबंधित न्यायाधीशों की एक उप-समिति ने यह सिफारिश की कि नियुक्तियों के विषय पर लार्ड चान्सलर का नियंत्रण बनाए रखते हुए भी इस कार्य में उसकी सहायता नियुक्ति संबंधी एक छोटी सलाहकार समिति द्वारा की जानी चाहिए।[1]

"फ्रांस"

5.17 फ्रांस में न्यायधीशों के चयन के लिए एक बिलकुल ही भिन्न माडल है। वहां की न्यायिक सेवा एक कैरियर सेवा है। प्रारम्भ से ही किसी व्यक्ति को यह चयन करना होता है कि क्या वह न्यायाधीश बनना चाहता है या विधिव्यवसायी अधिवक्ता। किसी को भी, विधिव्यवसायी अधिवक्ताओं के काडर में से न्यायाधीश नहीं नियुक्त किया जाता। फ्रांस में न्याय मंत्रालय है जो फ्रांस सरकार का भाग रूप है वस्तुतः न्यायनिर्णयन का कार्य करने वाले न्यायाधीशों पर इसका बहुत कम प्राधिकार है। न्यायाधीशों के चयन में राजनीतिक संरक्षण एक अवर्णित भूमिका निभाता है। बोर्डेक्स में "इकाले नेशनेल-डि-ला मैजिस्ट्रेचर" नामक एक प्रशिक्षण अकादमी है जहां कि भावी न्यायधीशों को 28 मास की न्यूनतम अवधि के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को न्यायिक सेवा में प्रवेश पाने के लिए एक परीक्षा पास करनी होती है।

5.18 सिद्धांततः गणराज्य का राष्ट्रपति, जिसे संविधान द्वारा "न्यायिक प्राधिकरण की स्वतंत्रता का गारंटीदाता" कहा जाता है, न्यायधीशों का चयन करता है। न्यायपालिका की एक उच्च परिषद् के द्वारा इस कार्य में उसकी सहायता की जाती है। प्रथा के अनुसार, न्यायाधीशों का चयन "कोर-डि-अपील" और "कोर डि-शशैसन" में 'काउंसिल सुपीरियर डिला-मैजिस्ट्रेचर' (न्यायपालिका की उच्च परिषद्) के द्वारा किया जाता है या न्याय मंत्री के द्वारा किया जाता है जो अवर न्यायालयों की दशा में, उच्च परिषद् से सलाह ले सकता है या उससे सलाह प्राप्त कर सकता है। उक्त उच्च परिषद् में गणराज्य का राष्ट्रपति (प्रधान के रूप में), न्याय मंत्री (उप-प्रधान के रूप में) और राष्ट्रपति द्वारा चुने गए विधिक पृष्ठभूमि वाले नौ व्यक्ति होते हैं जो 4 वर्षीय नवीकरणीय अवधि के लिए भागतः 'कोर-डि-शशैसन' और "काउंसिल दिता" की सिफारिश के आधार पर निम्नलिखित रीति में चुने जाते हैं: एक सदस्य 'काउंसिल दिता' से, तीन सदस्य 'कोर-डि-शशैसन से, तीन सदस्य अन्य न्यायालयों से और दो अन्य सदस्य अपने साधारण विधिक ज्ञान और सक्षमता के लिए चुने जाते हैं। किन्तु किसी भी दशा में, चयन करने वाले प्राधिकारियों को बहुत कम विकल्प होता है और यह विकल्प इंग्लैंड की तुलना में बहुत कम और निःसंदेह यूनाइटेड स्टैट्स की तुलना में भी निश्चयतः कम होता है।[2] न्यायाधीशों के चयन के संबंध में प्रारंभिक स्थिति को नीचे संक्षेप में इस प्रकार है :

> "————'कौंसिल दिता' के सदस्यों को न हटाए जाने की अभी भी ऐसी हैसियत प्राप्त नहीं है जो फ्रांसीसी न्यायपालिका का एक अमूल्य विशेषाधिकार है। तथापि, चलन के अनुसार, यह बात सोची भी नहीं जा सकती है कि न्यायपालिका के किसी सदस्य को राजनीतिक विचारणाओं के कारण पदच्युत किया जा सकता है। या अन्यथा उसे अनुशासित किया जा सकता है। निःसंदेह, तत्कालीन सरकार को उतनी शालीनता से जितना वह दिखा सकती है, निम्नलिखित असुविधाजनक निर्णयों को स्वीकार करना पड़ा है। 'ट्रेबीज' (सी० ई० 4 मार्च, 1949, जिसमें एक मंत्रालय के संपूर्ण कैरियर ढांचे को अविधिमान्य घोषित कर दिया गया था), "बारेल" (सी०ई० 28 मई, 1954, जिस पर आगे आने वाले अध्याय 9 में विचार-विमर्श किया गया है) और "केनाल" (सी०ई० 19 अक्तूबर, 1962, जिस पर पूर्ववर्ती अध्यय 3 में विचार-विमर्श किया गया है)। यद्यपि इस अंतिम निर्णय ने समग्र 'काउंसिल दित्ता' की संस्था में कुछ महत्वपूर्ण सुधार करने के लिए प्रेरित किया था, किन्तु फिर भी व्यक्तिगत सदस्यों के विरुद्ध कोई कार्रवाई करने के बारे में बिल्कुल ही नहीं सोचा जा सकता है।"

5.19 "प्रोन्नति कुछ आयु सीमाओं के अधीन रहते हुए सेवा में ज्येष्ठताक्रम पर पूर्णतः निर्भर करता है 'काउंसिल दित्ता' के सदस्यों के द्वारा इस सिद्धांत को उनकी स्वतंत्रता की एक अनिवार्य गारंटी माना जाता है"।[3]

---

1. तथैव, पृ० 30।
2. तथैव, पृ० 34।
3. ब्राउन एण्ड गार्नर, "फ्रेन्च एडमिनिस्ट्रेटिव ला" पृ० 54-55 (तृतीय संस्करण, 1983)।

5.20 "जेस्टिसेज आफ पीस" की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा न्याय मंत्रालय द्वारा कम से कम दो वर्ष कार्य करने वाले ऐसे वकीलों में से चयन करके की जाती है जो मंत्रालय द्वारा आयोजित परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं। ऊर्ध्वाकार प्रोन्नतियां प्रायः ज्येष्ठता के नियम द्वारा नियंत्रित होती है।[1]

आस्ट्रेलिया

5.21 आस्ट्रेलिया में शिखर न्यायालय को आस्ट्रेलिया का उच्च न्यायालय कहा जाता है और प्रत्येक संघीय राज्य का अपना सर्वोच्च न्यायालय है जिससे उस राज्य का उच्चतम न्यायालय कहा जाता है। संविधान, परिसंघीय न्यायपालिका के न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति, "सपरिषद गवर्नर जनरल" को प्रदान करता है जिससे मंत्रिमंडल की सलाह के अनुसार नियुक्ति करना विवक्षित है। प्ररूपानुसार ये नियुक्तियां, यथास्थिति, गवर्नर जनरल या राज्यों के सपरिषद् गवर्नर द्वारा की जाती हैं। सारतः और वस्तुतः ये नियुक्तियां मंत्रिमंडल द्वारा की जाती हैं। ऐसी कुछ पात्रात्मक अर्हताएं विहित की गई हैं जो कमोबेश विधिक परिषद् में व्यक्ति की प्रतिष्ठा के प्रश्न को नियंत्रित करती हैं, अर्थात् सुसंगत अधिकारिता के अधीन बैरिस्टर और/या सालिसिटर के रूप में किया गया विधि व्यवसाय। जब एक बार ये अपेक्षाएं, जो बहुत कठोर नहीं होती हैं, पूरी हो जाती हैं तो नियुक्ति करना कार्यपालिका के विवेकाधीन हो जाता है। जैसा कि इंग्लैंड में है, वहां न्यायिक नियुक्तियों के बारे में सलाह देने की शक्ति एक ही व्यक्ति-विशेष को प्रदान की गई है अर्थात् अत्यधिक वरिष्ट नियुक्तियों की दशा में प्रधान मंत्री को और अन्य मामलों में लार्ड चान्सलर को आस्ट्रेलिया में इस तथ्य के कारण स्थिति बिल्कुल विपरीत है कि वहां नियुक्तियां मंत्रिमंडल के वादविवाद का विषय नहीं होती। आस्ट्रेलिया में आरंभिक नामनिर्देशन प्रायः महान्यायवादी (अटर्नी जनरल) के द्वारा किया जाता है किन्तु अन्तिम रूप से नियुक्ति करना एक सामूहिक विनिश्चय है और महान्यायवादी की विनिर्दिष्ट सहमति इसके बारे में अपेक्षित नहीं है। यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका में अंगीकृत पद्धति से इसकी तुलना करने पर अमेरिका के उच्चतम न्यायालय में एक पद के लिए नाम निर्देशन राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है किन्तु सीनेट के दो-तिहाई बहुमत द्वारा इसका अनुसमर्थन अपेक्षित होगी और यह तथ्य ही नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति के लोकदायित्वाधीन होने का एक पहलू है। यह अनुसमर्थन मात्र प्ररूपिक नहीं है अपितु लोक महत्व के प्रश्नों पर प्रस्तावित नामनिर्देशिती के विचारों का गहरा विश्लेषण किया जाता है और कई बार इस संवीक्षा के परिणाम-स्वरूप नामनिर्देशनों को वापस लेना पड़ा है। आस्ट्रेलिया में ऐसा नहीं है जहां कि जनता की आलोचना को प्रायः नियुक्ति हो जाने के पश्चात् तक की प्रतीक्षा करनी पड़ती है, और इतना विलंब होता है कि यह आलोचना प्रभावी नहीं हो सकती।[2]

5.22 (आस्ट्रेलिया में भी) एक न्यायिक नियुक्ति समिति की स्थापना करने का प्रस्ताव है जिसकी समीक्षा सुसंगत स्थान पर की जाएगी।

कनाडा

5.23 कनाडा के उच्चतम न्यायालय और परिसंघीय न्यायालयों में नियुक्तियां 'सपरिषद्-गवर्नर जनरल' द्वारा की जाती है जो कि वस्तुतः कार्यपालिका द्वारा की जाती हैं। प्रांतीय न्यायालय, यद्यपि इनकी स्थापना प्रांतीय विधान-मंडलों द्वारा की जाती है, तथा इनका गठन, संगठन, शक्तियां और प्रक्रिया का अवधारण प्रांतीय विधान-मंडल द्वारा किया जाता है, फिर भी इन न्यायालयों अर्थात् प्रत्येक प्रांत में वरिष्ठ न्यायालयों, जिला न्यायालयों और कन्ट्री न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा की जाती है। वस्तुतः नियुक्ति की सिफरिश मंत्रिमंडल की सम्मति से न्याय मंत्री द्वारा की जाती है और यह नियुक्ति औपचारिक रीति में एक सामान्य प्रक्रम के रूप में परिषद् के आदेश पर हस्ताक्षर करके गवर्नर जनरल द्वारा की जाती है। इस प्रकार से नियुक्ति करने की शक्ति निःसंदेह कार्यपालिका में निहित है।[3]

सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ

5.24 अब एक अन्य माडल पर ध्यान देते हैं। रूस का उच्चतम न्यायालय देश में एक शिखर न्यायालय है और देश भर में अन्य सभी न्यायालय इसके अधीनस्थ हैं। ये सभी न्यायालय समान रूप से राज्य और परिसंघीय विधि को लागू करते हैं। न्यायपालिका के प्रत्येक स्तर पर न्यायाधीशों की नियुक्ति "निर्वाचन

1. उपरोक्त पाद टिप्पण सं० 10, पृ० 534-535।
2. जैम्स क्रैफोड, "आस्ट्रेलियन कोर्ट आफ ला", पृ० 52 (1982)।
3. उपरोक्त टिप्पण 10, पृ० 512।

सिद्धांत' के आधार पर की जाती है। प्रत्येक न्यायालय में दो प्रशिक्षित न्यायाधीश होते हैं और दो न्यायाधीश साधारण व्यक्ति होते हैं। यह व्यवस्था इस अनुमान पर आधारित है कि न्याय करना तकनीकी व्यक्तियों का ही कोई अनन्य विशेषाधिकार नहीं है अपितु न्याय के लिए तंत्र की व्यवस्था करना समाज की बाध्यता है और इस बाध्यता का पालन न्याय प्रशासन में जनता के भाग लेने के द्वारा पूरा किया जाता है। यह भी धारणा है कि राज्य के प्रत्येक नागरिक को न्याय प्रशासन में भाग लेना चाहिए दांडिक या सिविल प्रकार के प्रत्येक मामले का विचारण एक ऐसे समूह के द्वारा किया जाता है जिसमें एक प्रशिक्षित न्यायाधीश होता है और दो 'पीपुल्स असेसर्स' होते हैं। 'पिपुल्स असेसर्स', न्यायाधीशों की तरह, विधि में प्रशिक्षित न्यायिक व्यवसाय करने वाले' अधिवक्ताओं में से या विधि के शिक्षकों में से या विधिक अर्हताओं वाले व्यक्तियों में से भर्ती नहीं किए जाते अपितु वे समाज के सभी वर्गों में से जिसे किसानों, श्रमिकों, कारखानों और कार्यालयों के कर्मकारों में से लिए जाते हैं। इन्हें न्यायाधीश की शक्ति प्राप्त होती है, वे 'असेसर' की सलाहकारी भूमिका नहीं निभाते हैं। इन सभी तीनों न्यायाधीशों की प्रास्थिति बराबर की होती है। न्यायनिर्णय की भूमिका में ये सब किसी भी प्रकार के बाह्य हस्तक्षेप से पूर्णत: स्वतंत्र होते हैं। इनकी स्वतंत्र प्रास्थिति ऐसे प्रत्यक्ष लोकप्रिय निर्वाचन द्वारा सुनिश्चित की जाती है जो न्याय प्रशासन में न्याय की संभावना करने वालों की विश्वसनीयता की श्रृंखला में एक कड़ी की व्यवस्था करती है।[1]

5.25 न्यायालयों की क्रमपरंपरा के प्रति निर्देश करने पर सर्वप्रथम हम 'जनता के न्यायालयों' (पिपल्स कोर्ट्स) के प्रति निर्देश कर सकते हैं। ये निम्नतम श्रेणी के न्यायालय हैं जो प्रत्येक नगर और जिले में स्थापित किए गए हैं और साधारण न्यायाधीशों का, जिन्हें इस न्यायालय में कार्य करना पड़ता है, निर्वाचन, वकीलों को छोड़कर समाज के विभिन्न अन्य वर्गों में से किया जाता है। एक प्रशिक्षित न्यायाधीश का निर्वाचन प्रत्येक जिले के नागरिकों के द्वारा सार्वजनीन प्रत्यक्ष और समान मताधिकार वाले गुप्त मतदान के आधार पर दस वर्ष के विधि व्यवसाय की अवस्थिति वाले वकीलों में से संघों और सांस्कृतिक संगठनों द्वारा किए गए नामनिर्देशन पर पांच वर्ष की अवधि के लिए किया जाता है। 'पिपल्स असेसरों' का निर्वाचन औद्योगिक, कार्यालयिक तथा व्यावसायिक, कर्मकारों और किसानों की महासभा में उनके कार्यस्थलों या निवास स्थानों पर साधारण सभाओं में तथा सैनिक द्वारा सैनिक यूनिटों में दो वर्ष की अवधि के लिए हाथ उठाकर किया जाता है। ऐसे न्यायाधीश के लिए व्यावसायिक होना अपेक्षित नहीं है यद्यपि प्राय: ऐसे न्यायाधीश व्यावसायिक होते हैं और 'असेसर' की, चूंकि वे साधारण व्यक्ति होते हैं, कोई औपचारिक विधिक या न्यायिक पृष्ठ भूमि नहीं होती।

5.26 राज्यक्षेत्रों, प्रदेशों, नगरों, स्वायत्तशासी प्रदेशों और प्राकृतिक क्षेत्रों के न्यायालयों के न्यायाधीशों का निर्वाचन संबंधित राज्यक्षेत्र प्रदेशों, स्वायत्तशासी प्रदेशों या क्षेत्रों के "वर्किंग पिपुल्स डिप्यूटीज" के सोवियतों द्वारा पांच वर्ष की अवधि के लिए किया जाता है। इन न्यायालयों के न्यायाधीश व्यावसायिकत: प्रशिक्षित होते हैं और राजनीतिक दृष्टि से प्रसिद्ध होते हैं।

5.27 स्वायत्तशासी गणराज्य में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों का निर्वाचन पांच वर्ष की अवधि के लिए स्वायत्तशासी गणराज्यों के "सुप्रीम सोवियतों" द्वारा किया जाता है। संघ गणराज्यों के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों का निर्वाचन भी पांच वर्ष की अवधि के लिए तत्संबंधी संघ गणराज्य के सुप्रीम सोवियतों द्वारा किया जाता है।

5.28 सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों का निर्वाचन पांच वर्षों की अवधि के लिए सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ के सुप्रीम सोवियतों द्वारा किया जाता है। इस पद्धति की केवल यह आलोचना सुनी गई है कि सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश वस्तुत: साम्यवादी दल के नेताओं द्वारा चुने जाते हैं और यह न्यायालय केन्द्र सरकार की संरचना में सावधानीपूर्वक एकीकृत किया गया है।

5.29 सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ के उच्चतम न्यायालय की संरचना विशेष ध्यान दिए जाने योग्य है। इसमें एक सभापति दो उप-सभापति, 9 व्यावसायिक न्यायाधीश तथा[2] "पिपुल्स असेसर्स" होते हैं। प्रत्येक संघ गणराज्य के उच्चतम न्यायालय का सभापति सोवियत समाजवादी गणराज्य

---

1. उपरोक्त टिप्पण 10, पृ० 548-551।

देखिए सामान्यत: उपरोक्त टिप्पण 1, पृ० 286-289; उपरोक्त टिप्पण 10, पृ० 592-597।

2

के उच्चतम न्यायालय का पदेन सदस्य होता है। सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ का उच्चतम न्यायालय कार्यपालक और विधायी कार्य के न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति नहीं रखता, जैसी कि हमारे संविधान में समझी जाती है और न ही इसे विधियों के निर्वचन का विशेषकर संविधान के निर्वचन का, कोई प्राधिकार है फिर भी सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ की सुप्रीम सोवियत के प्रजेडियम के संबंध में इसकी सलाहकारी भूमिका होती है जिसे यह उच्चतम न्यायालय विधियों और संविधान के अर्थान्वियन के प्रश्नों के बारे में सलाह दे सकता है।

5.30 इसके पूर्व एक अवसर पर[1] विधि आयोग ने पश्चिम जर्मनी, जापान और मलावी देशों के द्वारा अंगीकार की गई न्यायाधीशों को नियुक्त करने की पद्धति की भी समीक्षा की थी। उस पद्धति में हाल ही के वर्षों के दौरान कोई उल्लेखनीय पविर्तन नहीं हुआ है और इसलिए इसकी पुनरावृत्ति करना जानी पहचानी बात का अनावश्यक उल्लेख करना होगा।

5.31 ज्ञान ही शक्ति है। विश्व के विभिन्न माडलों की समीक्षा ने एक नए माडल की खोज करने में विधि आयोग को पर्याप्त सहायता दी है। इन तुलनात्मक माडलों को ध्यान में रखा जाएगा और इस प्रक्रिया में उस अनुभव को जोड़ दिया जाएगा जो इन सब वर्षों के दौरान प्रचलित स्कीम के कार्यकरण से प्राप्त हुआ है। उद्देश्यों को भी ध्यान में रखा जाएगा। एक नए माडल की खोज करने में इन सबको समाविष्ट किया जाएगा।

---

2. भारत का विधि आयोग, 80वीं रिपोर्ट, अध्याय 3।

अध्याय VI

समाधान की खोज

6.1 चार दशकों की यह अवधि स्पष्ट रूप से सारी स्थिति का जायजा लेने और एक प्रकार से न्यायपालिका की स्थिति का तुलनपत्र तैयार करने के लिए एक सीमा-रेखा है। वरिष्ठ न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति की विद्यमान स्कीम, यदि सूक्ष्म रूप से कहा जाए तो 37 वर्ष की अवधि तक प्रचलित रही है। इस अवधि के दौरान जिस प्रकार से इस माडल ने कार्य किया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस स्कीम के सकल कार्यकरण में बहुत कुछ किया जाना अपेक्षित है। प्रभावी रूप से कार्य करने वाले माडल को जिसकी प्रकृति क्रियात्मक हो, दो उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ होना चाहिए : (1) न्यायाधीशों की रिक्तियों का त्वरित और शीघ्र भरा जाना तथा उन्हें तत्काल पदासीन करना; और (2) प्रथम श्रेणी के विद्वान, दक्ष, ईमानदार और स्वतंत्र न्यायधीशों का चयन करना। न्यायपालिका में कार्य करने के लिए मानव शक्ति का चयन करना न्यायपालिका को समनुदिष्ट कृत्यों का एक अभिन्न भाग है : सरकार जब सांगोपांग न्यायिक सुधारों की सिफारिश करने के लिए एक न्यायिक सुधार आयोग स्थापित करने की आवश्यकता महसूस करेगी तो वह इस आयोग की परिधि में न केवल न्यायिक पद्धति की पुनः संरचना का कार्य ही अपितु इससे अभिन्न और अविच्छिन्न रूप में, मानवशक्ति आयोजना अथवा जिसे "मानव शक्ति निवेश" कहा जाता है, भी लाएगी जो कि इस पद्धति की रीढ़ की हड्डी है। यदि वर्तमान स्कीम समाज की मांगों और आवश्यकताओं को पूरा करती है तो कुछ अधिक किया जाना अपेक्षित नहीं है। किन्तु, जैसा कि पहले इसमें बताया जा चुका है, वर्तमान माडल एक मुमुर्षु माडल है और यह स्कीम इस दृष्टि से निष्क्रिय हो चुकी है क्योंकि इससे दोनों ही आशाएं बिल्कुल ही पूरी नहीं हुई है; इसलिए न्यायाधीशों के चयन और उनकी नियुक्ति के लिए एक नया माडल प्रकल्पित किया जाना है और इस माडल को अपने क्रियाशील निष्पादन की दृष्टि से ऊपर लिखित दोनों लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहिए। संक्षेप में; प्रस्तावित स्कीम या माडल को, इस स्कीम के चलाने वाले प्राधिकारियों को उसी समय न्यायाधीशों की नियुक्ति करके तत्काल रिक्तियां भरने में समर्थ बनाना चाहिए, जिस तारीख को रिक्ति होती है और उन प्राधिकारियों को दक्ष, सक्षम तथा सांविधानिक मूल्यों का सम्मान करने वाले न्यायाधीशों का चयन करने में भी समर्थ होना चाहिए। न्यायपालिका में मानवशक्ति निवेश की खोज, इस खोज के लिए क्रियाविधि का पूर्वाभास कराती है। यदि यह क्रियाविधि त्रुटिपूर्ण या अपूर्ण है तो इसके माध्यम से की गई खोज से न्यायपालिका में कार्य करने के लिए सही प्रकार के व्यक्तियों का पता नहीं लगाया जा सकेगा। आरंभतः इस बात का विश्लेषण किया जाना चाहिए कि वर्तमान स्कीम अपने उन उद्देश्यों को प्राप्त करने में क्यों असफल रही है जिन उद्देश्यों के लिए यह प्रकल्पित की गई थी। अगला प्रश्न यह है कि क्या यह सुधारने योग्य है, जैसा कि एक पूर्ववर्ती अवसर पर विधि आयोग द्वारा प्रयास किया गया था[1]। यदि इसका उत्तर नकारात्मक है तो अगला प्रश्न यह होगा कि क्या एक नया माडल प्रकल्पित किया जाना चाहिए और ऐसे माडल के मूल तत्व क्या होने चाहिए।

6.2 संविधान सभा ने उच्चतम न्यायालय के लिए न्यायाधीशों का चयन करने की सर्वोत्तम पद्धति की सिफारिश करने के लिए देश के उत्कृष्ट विधिवेत्ताओं की एक उच्च शक्ति प्राप्त तदर्थ समिति नियुक्त की थी। इस समिति ने एक सर्वसम्मत रिपोर्ट पेश की जिसमें यह स्पष्ट राय दी गई थी कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त करने की शक्ति को संघ के राष्ट्रपति के स्वच्छन्द विवेकाधिकार पर छोड़ा जाना समीचीन नहीं होगा। समिति ने यह सुझाव देते हुए दो आनुकल्पिक पद्धतियों की सिफारिश की थी कि इनमें से किसी भी सिफारिश को अंगीकार कर लिया जाए। दो आनुकल्पिक पद्धतियां ये थीं : (1) राष्ट्रपति को, उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायामूर्ति से परामर्श करके (जहां तक अवर न्यायाधीश की नियुक्ति का संबंध है) ऐसे व्यक्ति को नामनिर्दिष्ट करना चाहिए जिसे वह उच्चतम न्यायालय में नियुक्त किए जाने के लिए योग्य समझता है और इस नामनिर्देशन की पुष्टि ऐसे पैनल के ग्यारह सदस्यों में से कम से कम सात सदस्यों के बहुमत के द्वारा की जानी चाहिए जिसे पैनल के कुछ सदस्य उच्च न्यायालयों के न्यायमूर्तियों में से,

---

1. भारत का विधि आयोग, 80वीं रिपोर्ट।

कुछ सदस्य केंद्रीय विधान-मंडल के दोनों सदनों में से और कुछ सदस्य संघ के विधि अधिकारियों में से हों; अथवा (2) 11 सदस्यों का पैनल ऐसे तीन नामों के बारे में सिफारिश करे जिनमें से एक का चयन राष्ट्रपति, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से, नियुक्ति के लिए कर सकता है। इसी प्रक्रिया का अनुसरण मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति के लिए किया जाना चाहिए, सिवाय इस बात के कि ऐसे मामले में मुख्य न्यायमूर्ति के साथ कोई परामर्श नहीं किया जाएगा। समिति के समक्ष विद्यमान माडल भी था जो कि भारत शासन अधिनियम, 1935[1] में उल्लिखित था।

6.3 विधि आयोग ने सन् 1950 से लेकर 1987 तक इस क्रियाविधि के कार्यकरण की समीक्षा करने के पश्चात् निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला :—

> "लगभग सार्वजनीन और समवेत स्वर में यही टिप्पणी है कि किए गए चयन असंतोषजनक हैं और यह कि ये चयन कार्यपालिका के प्रभाव से उत्प्रेरित हैं। यह कहा गया है कि ऐसा प्रतीत होता है कि इन चयनों के बारे में कार्रवाई किसी मान्य सिद्धांत के आधार पर नहीं की गई है और ऐसा लगता है कि ये या तो राजनीतिक समीचीनता या क्षेत्रीय अथवा सांप्रदायिक भावनाओं की विचारणाओं के आधार पर किए गए हैं। न्यायपीठ में नियुक्त किए गए विधिज्ञ परिषद् के कुछ सदस्य विधि व्यवसाय में प्रथम पंक्ति के नहीं थे—न तो अपनी विधिक योग्यता की दृष्टि से और न अपनी बहुत अच्छी विधिक हैसियत की दृष्टि से। ऐसा भी प्रतीत होता है कि अनेक समर्थ और सुयोग्य व्यक्तियों की अनदेखी ऐसे कारणों से की गई है जो कारण राजनैतिक या सांप्रदायिक या ऐसे आधारों से उद्भूत होते हैं। न्यायिक सेवाओं से चुने गए व्यक्तियों के बारे में भी ऐसी ही तीक्ष्ण और अधिक प्रतिकूल टिप्पणियां की गई हैं। हमारा यह समाधान हो गया है कि हमारे समक्ष व्यक्त किए गए मत इन नियुक्तियों के संबंध में जनता के सुआधारित और कटु असंतोष को प्रकट करते हैं। हमारे द्वारा इस रिपोर्ट में किसी स्थान पर निर्दिष्ट मु० न्या० कानिया के इस मत की कि "वरिष्ठ न्यायपालिका के लिए चयन करने का एक मात्र आधार योग्यता (मैरिट) होना चाहिए, ऐसा लगता है कि पूर्णतः अनदेखी की गई है[2]।
>
> व्यापक रूप से यह महसूस किया गया है कि न्यायाधीशों का चयन करने में सांप्रदायिक और क्षेत्रीय विचारणा अभिभावी रही है। इस विचार ने संभवतः इस कारण जोड़ पकड़ा कि भारत के घटक राज्यों को भी उनकी स्थिति के अनुसार न्यायालय में प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। यद्यपि हम अपने आपको एक धर्मनिरपेक्ष राज्य कहते हैं फिर भी सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के विचारों का जो अंग्रेजों के द्वारा हमारे राजनीतिक ढांचे में विद्वेषतः समाहित कर दिए गए थे, प्रभाव पूर्णतः समाप्त नहीं हुआ है। संभवतः और अधिक खेदजनक बात तो यह है कि सामान्य धारणा तो यह है कि न्यायपालिका में की गई कुछ नियुक्तियों के लिए उच्चस्थ व्यक्तियों की ओर से बार बार डाला गया कार्यपालक प्रभाव ही जिम्मेदार रहा है। निःसंदेह यह सत्य है कि उच्च न्यायालयों के प्रतिभाशाली न्यायाधीश को सदैव, उच्चतम न्यायालय में स्थान नहीं मिला है[3]।

इस स्थिति को सुधारने के लिए आयोग ने वह सुझाव शामिल करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 217 के संशोधन की सिफारिश की जो सुझाव संविधान सभा द्वारा नामंजूर कर दिया गया था अर्थात् यह कि उच्च न्यायालय में की जाने वाली प्रत्येक नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा सिफारिश किए जाने पर भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सम्मति से की जाएगी। इसे कार्यपालक शक्ति पर न्यायिक वीटो करार दिया गया। आयोग ने इस बात की भी सिफारिश की कि राज्य की कार्यपालिका के लिए अपने विचार व्यक्त करने और उन विचारों को केन्द्र सरकार को भेजने की स्वतंत्रता तो होनी चाहिए किन्तु फिर भी राज्य की कार्यपालिका की भूमिका मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा प्रस्तावित नामनिर्देशिती के बारे में अपनी टिप्पणियां करने तक ही सीमित रहनी चाहिए, और यदि आवश्यक हो तो मुख्य न्यायमूर्ति को एक नए सिरे से सिफारिश करने के लिए कहने तक ही सीमित रहनी चाहिए[4]। साफ प्रकट होता है कि इस सिफारिश को कार्यान्वित नहीं किया गया है।

---

1. बी० शिवा राव, "दि फ्रेमिंग आफ इंडियाज कांस्टीट्यूशन : स्लेक्ट डाक्यूमेंट्स" जिल्द II, पृ० 59।
2. भारत का विधि आयोग, 14वीं रिपोर्ट जिल्द, ii, पृ० 69-70।
3. तथैव, पृ० 34।
4. तथैव, पृ० 75।

6.4 न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया का पुनर्विलोकन प्रशासनिक सुधार आयोग के केन्द्र-राज्य संबंधों के एक अध्ययन दल द्वारा किया गया था। इस दल ने उन सिफारिशों का समर्थन किया था जिनका उल्लेख पूर्ववर्ती पैरा में किया गया है और ऐसा समर्थन उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के विषय में कार्यपालिका की भूमिका को निर्बन्धित करने की दृष्टि से किया गया था। दल ने यह राय दी कि यह क्रियाविधि न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुदृढ़ बनाएगी। इस अध्ययन दल की सिफारिशों पर प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा विचार किया गया था। तथापि, इस आयोग की यह राय थी कि विद्यमान प्रक्रिया में कोई परिवर्तन किया जाना वांछनीय नहीं है[1]।

6.5 यही विषय फिर से उच्च न्यायालयों में बकाया मामलों से संबंधित एक समिति की समीक्षा के लिए भी सामने आया। इस समिति ने नियुक्ति की क्रियाविधि की रूपरेखा पर विचार नहीं किया अपितु केवल यह सुझाव दिया कि किसी नियुक्ति के भरने की कार्रवाई पर्याप्त समय पूर्व प्रारंभ कर दी जानी चाहिए ताकि न्यायाधीशों का चयन तब तक पूरा हो जाए जिस समय रिक्ति होती है। प्रस्ताव पर कार्रवाई करने में कार्यपालिका को डोलायमान स्थिति को असफल बनाने के लिए समिति ने यह सुझाव दिया कि यदि मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा की गई सिफारिश पर, इस सिफारिश की प्राप्ति की तारीख से एक मास के भीतर विचार नहीं किया जाता है तो यह समझा जाना चाहिए कि मुख्य न्यायमूर्ति की सिफारिश को स्वीकार कर लिया गया है और केन्द्र सरकार को उस प्रस्ताव का शीघ्र निपटारा करने के लिए विचार करना चाहिए[2]।

6.6 सन् 1973 में न्यायाधीशों के अतिष्ठित किए जाने के परिणामस्वरूप उठे संविवाद के दौरान 11 और 12 अगस्त, 1973 को आयोजित देश भर के वकीलों की एक कंवेंशन ने मुख्य न्यायमूर्ति और न्यायाधीशों की नियुक्ति से संबंधित मानदंड, मशीनरी और प्रक्रिया के बारे में एक सर्वसम्मत संकल्प पारित किया था। इस संकल्प में अन्य बातों के साथ-साथ यह सिफारिश की गई थी कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति, (मुख्य न्यायमूर्ति को शामिल करते हुए) उच्च न्यायालयों के तीन वरिष्ठतम न्यायाधीशों तथा उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन के द्वारा इस प्रयोजन के लिए नामनिर्दिष्ट दो वरिष्ठ अधिवक्ताओं की समिति की सिफारिश पर की जानी चाहिए। सिफारिश का शुभारम्भ करने की शक्ति सदैव ही समिति के पास होनी चाहिए, किसी कार्यपालक प्राधिकारी के पास नहीं[3]। इस प्रकार पहली बार, वरिष्ठ न्यायपालिका के लिए न्यायाधीशों के चयन के विषय में भारत के अधिवक्ताओं के हस्तक्षेप और सहयोग की बात सुझाई गई थी।

6.7 सन् 1977 में भारत के तत्कालीन प्रधान मंत्री की प्रेरणा पर विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय के सचिव ने उच्चतम न्यायालय के और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के प्रश्न की समीक्षा करने के लिए विधि आयोग से निवेदन किया। विधि आयोग ने इस कार्य को प्रारंभ किया। आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि :

> "तथापि, यह धारणा सदैव बनी रही है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति सदैव योग्यता के आधार पर नहीं की गई है और यह कि इस बात ने उच्च न्यायालयों की छवि को प्रभावित किया है। इस धारणा को बल, विधि आयोग की 14वीं रिपोर्ट द्वारा प्रदान किया गया था। आयोग ने, इस बात पर ध्यान देते हुए कि अधिकतर नियुक्तियां, उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को शामिल करते हुए, सभी सम्बद्ध प्राधिकारियों की सहमति से की गई थीं, यह मत व्यक्त किया कि प्रचलित प्रक्रिया में, उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों ने ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति से, जिनके नाम की सिफारिश उन्होंने नहीं की थी, उद्भूत होने वाली अप्रिय परिस्थितियों को रोकने के लिए ही अपनी सहमति दी थी[4]।"

---

1. तत्रैव, पृ० 19-20।
2. उच्च न्यायालयों में बकाया मामलों से संबंधित समिति की रिपोर्ट, 1972-80।
3. राजीव धवन और एलिस जैकब, "सलेक्शन एण्ड अपायन्टमेंट आफ सुप्रीम कोर्ट जजेज : एक केस स्टडी", पृ० 111-112 (1978)।
4. उपरोक्त टिप्पण 1, पृ० 18।

आयोग ने विनिर्दिष्टत: अनुच्छेद 217 के संशोधन का सुझाव नहीं दिया, जैसा कि पूर्ववर्ती रिपोर्ट में दिया गया था, किन्तु यह सिफारिश की कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए सिफारिश करते समय मुख्य न्यायमूर्ति को अपने दो वरिष्ठतम सहकर्मियों से परामर्श करना चाहिए और उस सिफारिश को आगे भेजते समय उसमें इस प्रकार किए गए परामर्श के तथ्य का उल्लेख भी करना चाहिए तथा अपने दोनों सहकर्मियों के विचारों को भी उपदर्शित करना चाहिए। इस निकाय की सर्वसम्मत सिफारिश को सामान्यत: कार्यपालिका द्वारा स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। आयोग ने यह भी सिफारिश की थी कि ऐसे व्यक्तियों का एक उच्च स्तरीय पैनल उच्चतम न्यायपालिका में नियुक्ति के विषय में बाह्य विचारणाओं को समाप्त करने और एक निष्पक्ष संवीक्षा सुनिश्चित करने के लिए गठित किया जाए जिसमें ऐसे व्यक्ति सम्मिलित हों जो अपनी निष्ठा, स्वतंत्रता और न्यायिक पृष्ठभूमि के लिए विख्यात हों। इस पैनल में, भारत का मुख्य न्यायमूर्ति, विधि और न्याय मंत्री तथा ऐसे तीन अन्य व्यक्ति होने चाहिए थे जिनमें से प्रत्येक उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति या न्यायाधीश रहा हो। यह भी एक ऐसा माडल था जिसके द्वारा अनुच्छेद 217 में उल्लिखित व्यक्तियों से भिन्न व्यक्तियों का, भाग लेना प्रकल्पित था। सन् 1977-79 के दौरान इस सिफारिश के एक भाग को अनौपचारिक रूप से स्वीकार कर लिया गया था[1]।

6.8 फरवरी, 1978 में भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति के सेवा-निवृत होने की पूर्व संध्या पर, जब उनके उत्तराधिकारी का प्रश्न भारत सरकार का ध्यान आकृष्ट कर रहा था तब मुम्बई के 52 व्यक्तियों के एक दल ने, जिसमें वकील, राजनीतिज्ञ, सेवा-निवृत्त न्यायाधीश तथा अनेक अन्य व्यक्ति भी थे– जिनमें से कुछ ने सन् 1973 में न्यायाधीशों के अतिष्ठित किए जाने के समय भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के चयन के विषय में ज्येष्ठता के सिद्धांत का स्पष्ट शब्दों में समर्थन किया था, एकदम उल्टी कलाबाजी खाई और बड़े जोरदार शब्दों में यह कहा कि "अब ज्येष्ठता के प्रश्न को आंख-मींच कर बहाल करने का अर्थ होगा, प्रतिबद्धता के आधार पर निर्मित क्रम परम्परा को बनाए रखना; यह एक ऐसी क्रम परम्परा है जो इस प्रकार बनाई गई है कि दो वरिष्ठतम आसीन न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय के सभी अन्य ऐसे आसीन न्यायाधीशों की सेवा अवधि के उपरान्त भी सेवा में बने रहेंगे, जिनमें से अनेक न्यायाधीशों की सेवा का रिकार्ड उत्कृष्ट रहा हो[2]। विकल्प के रूप में उन्होंने यह सिफारिश की कि: न्यायिक व्यक्तियों का एक ऐसा आयोग तुरंत गठित किया जाना चाहिए जिसमें 5 या 7 व्यक्ति हों, उदाहरणार्थ उच्चतम न्यायालय के 3 ख्याति-प्राप्त पूर्ववर्ती न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय बार एसोसिएशन का अध्यक्ष, बार का एक ख्याति प्राप्त और प्रसिद्ध सदस्य (चाहे वह सक्रिय रूप से विधि व्यवसाय कर रहा हो या न कर रहा हो) और भारतीय विधिज्ञ परिषद् का अध्यक्ष (यदि वह निर्वाचित अध्यक्ष हो तो, अन्यथा नहीं)। इस आयोग को ऐसे दो अन्य सदस्य सहयोजित करने की भी शक्ति हो सकेगी जो सरकारी अधिकारी न हों[3]। तत्कालीन सरकार ने किसी को भी इस संदेह में नहीं रखा कि न्यायाधीश नियुक्त करने की शक्ति किसी एक व्यक्ति के हाथ में समर्पित नहीं की जा सकती है और यह कि सरकार ही न्यायिक नियुक्तियां करती हैं, वकील लोग नहीं।

6.9 एस० पी० गुप्ता बनाम भारत संघ के मामले की सुनवाई के दौरान विधिज्ञ परिषद् द्वारा की गई तीखी आलोचना पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कि वरिष्ठ न्यायपालिका में न्यायाधीशों के चयन और नियुक्ति के विषय में कार्यपालक के हस्तक्षेप ने, न्यायपालिका की स्वतंत्रता को क्षीण करने के अतिरिक्त समाज के एक बड़े वर्ग में इस भावना को जन्म दिया है कि वरिष्ठ न्यायपालिका की सदस्यता एक राजनीतिक उपहार के रूप में उपलब्ध है, न्या० भगवती ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया :—

> "उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के संबंध में राष्ट्रपति को सिफारिश करने के लिए एक निकाय (कालेजियम) होना चाहिए। सिफारिश करने वाले इस प्राधिकरण का आधार अधिक व्यापक होना चाहिए और व्यापक हितों को ध्यान में रख कर परामर्श किया जाना चाहिए। यदि उक्त निकाय (कालेजियम) ऐसे व्यक्तियों से मिल कर बनाया जाए जिन्हें ऐसे व्यक्तियों के बारे में पूर्ण ज्ञान हो जो न्यायालय में नियुक्त किए जाने के लिए योग्य हों और जिनमें नियुक्ति के लिए अपेक्षित गुण हों, और यह पश्चात्‌वर्ती अपेक्षा अत्यन्त आवश्यक

1. तथैव, पृ० 34।
2. मुम्बई, ज्ञापन, उपरोक्त पाद टिप्पण सं० 8 के पृ० 120 पर उद्धृत।
3. तथैव, पृ० 124।

है, तो उक्त निकाय (कालेजियम) का गठन उचित प्रकार के ऐसे न्यायाधीशों का पता लगाने में बहुत कुछ सहायक होगा जो इस दृष्टि से सही अर्थों में स्वतन्त्र होंगे जो हमने ऊपर उपदर्शित की है और जो समाज के वंचित किए गए और शोषित वर्ग के लिए न्यायिक प्रक्रिया को महत्व और अर्थ प्रदान करेंगे। हम यह और उल्लेख करना चाहेंगे कि आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड जैसे देशों ने भी इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया है कि उच्च न्यायपालिका में नियुक्ति के लिए एक न्यायिक आयोग होना चाहिए[1]"

6.10 न्यायिक नियुक्तियों और स्थानांतरणों के प्रश्न के सभी पहलुओं की समीक्षा करने के लिए भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा अहमदाबाद में आयोजित वकीलों की एक राष्ट्रीय संगोष्ठी में यह राय व्यक्त की गई थी कि नियुक्तियां करने में न्यायपालिका की भूमिका, जैसी कि संविधान में व्यवस्था की गई है, औपचारिक और न्यूनतम होनी चाहिए। वरिष्ठ न्यायपालिका के न्यायाधीशों के चयन और नियुक्ति के विषय में कार्रवाई का शुभारंभ निरपवादतः भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा किया जाना चाहिए। इस संगोष्ठी ने उच्चतम न्यायालय में नियुक्तियों के लिए एक निकाय (कालेजियम) की सिफारिश की जिसमें निम्नलिखित सदस्य होने चाहिएं : (1) भारत का मुख्य न्यायमूर्ति, (2) उच्चतम न्यायालय के 5 ज्येष्ठ न्यायाधीश, और (3) भारतीय विधिज्ञ परिषद् और उच्चतम न्यायालय बार एसोसिएशन का प्रतिनिधित्व करने वाले 2 प्रतिनिधि। इस संगोष्ठी का यह भी विचार था कि निकाय (कालेजियम) की सिफारिश सरकार के लिए आबद्धकर होगी, यद्यपि सरकार के लिए विनिर्दिष्ट मामलों के बारे में ऐसे आधारों पर पुनर्विचार करने के लिए कहने की स्वतंत्रता होगी जो प्रथम दृष्ट्या यह उपदर्शित करें कि उक्त चयन पर पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता है। इसी प्रकार से, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए भी संगोष्ठी ने एक निकाय (कालेजियम) की सिफारिश की जिसमें निम्नलिखित सदस्य होने चाहिएं : (1) उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति, (2) उच्च न्यायालय के 2 ज्येष्ठतम न्यायाधीश, और (3) उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन द्वारा अपने प्रतिनिधि के रूप में नामनिर्दिष्ट किए गए दो अग्रणी अधिवक्ता[2]।

6.11 एक थोड़ा सा भिन्न मॉडल भी यहां समीक्षा किए जाने के लिए उपलब्ध है। इस माडल में न्यायपालिका की एक वरिष्ठ परिषद् की स्थापना का सुझाव दिया गया है जिसमें गणराज्य का राष्ट्रपति, अध्यक्ष के रूप में, विधि और न्याय मंत्री तथा भारत का मुख्य न्यायमूर्ति, उपाध्यक्ष के रूप में, उच्चतम न्यायालय के दो अन्य न्यायाधीश, उच्च न्यायालयों के दो मुख्य न्यायमूर्ति, राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्दिष्ट चार व्यक्ति और संसद् द्वारा निर्वाचित चार व्यक्ति होने चाहिएं। यह परिषद् एक बहुद्देशीय परिषद् होगी जिसे न्यायपालिका के चयन, नियुक्ति, स्थानांतरण और अनुशासनिक मामलों को भी शामिल करते हुए, सभी प्रशासनिक विषय सौंपे जाएंगे[3]।

6.12 भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, श्री वाई०वी० चन्द्रचूड़ (1978—85) ने, "दि इरोजन ऑफ जुडीशियरी एण्ड रेमीडियल मेयर्स" विषय पर भारतीय विधिज्ञ परिषद् ट्रस्ट के सहयोग से बिहार राज्य विधिज्ञ परिषद् के तत्वावधान में 26 फरवरी, 1983 को पटना में आयोजित एक संगोष्ठी का उद्घाटन करते समय यह स्पष्टतः संस्वीकार किया कि चयन और नियुक्ति की वर्तमान प्रक्रिया "अप्रचलित" हो गई है और इसे "सम्मानपूर्वक दफना दिया जाना चाहिए"। उनके मतानुसार प्रस्तावित निकाय (कालेजियम) में तीन न्यायाधीश, अधिवक्ताओं के दो प्रतिनिधि, सरकार के दो प्रतिनिधि और (संसद् में) विरोधी पक्ष के दो प्रतिनिधि होने चाहिएं। उनकी राय थी कि इस निकाय (कालेजियम) द्वारा की गई सिफारिश किसी एक व्यक्ति द्वारा अपने संकुचित मन से और गुप्त कक्ष से की गई सिफारिश की तुलना में अधिक विश्वसनीय और स्वीकार्य हो सकती है[4]।

6.13 एक राज्य के एक मुख्य मंत्री की यह राय है कि 'उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए संविधान में अन्तर्विष्ट सांविधानिक उपबंध बहुत निर्बल साबित हुए हैं———'। उन्होंने

---

1. (1981) सप्लीमेंट एस सी सी 87, 233।
2. अहमदाबाद में 17 अक्तूबर, 1981 को आयोजित न्यायिक नियुक्तियों और स्थानान्तरणों से संबंधित राष्ट्रीय गोष्ठी की की कार्यवाहियों का संक्षेप, 8 जे बी सी आई, पृ० 157।
3. जे० मिनेतुर, "सुपीरियर काउंसिल आफ जुडिशियल" मद्रास ला जर्नल, 56-60 (1976)।
4. आर०के०हेगड़े, द्वारा "दि जुडिशियरी टुडे : एप्ली फार कालेजियम", के पृ० 38 पर उद्धृत।

न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में राष्ट्रपति को सिफारिशें करने के लिए एक निकाय (कालेजियम) स्थापित करने के लिए जोरदार दलील दी[1]।

6.14 एक प्रसिद्ध विधि-शिक्षा शास्त्री जिनकी यह राय है कि वर्तमान क्रियाविधि ने वरिष्ठ न्यायपालिका के न्यायाधीशों के चयन के विषय में कार्यपालिका को कुछ अधिक ही शक्ति दी है, न्यायिक पदों के लिए एक निकाय (कालेजियम) की स्थापना का समर्थन करते हैं और उनके अनुसार यह निकाय (कालेजियम) प्रजातंत्र में किया गया एक प्रकार का निवेश है[2]। उनके अनुसार उच्चतम न्यायालय से संबंधित निकाय (कालेजियम) में निम्नलिखित व्यक्ति होने चाहिए :—

(1) भारत का राष्ट्रपति;

(2) लोक सभा का अध्यक्ष;

(3) राज्य सभा का सभापति;

(4) विपक्ष का एक नेता (यदि ऐसा कोई है);

(5) भारत सरकार का विधि और न्याय मंत्री;

(6) भारत का मुख्य न्यायमूर्ति;

(7) उच्चतम न्यायालय के 5 ज्येष्ठ न्यायाधीश; और

(8) भारत का महान्यायवादी।

ये व्यक्ति अपने पद के कारण से ही उक्त 'कालेजियम' के सदस्य होंगे। इस कालेजियम में गैर-सरकारी संघटक के रूप में कम से कम एक ऐसी महिला और अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति का एक-एक व्यक्ति सदस्य होना चाहिए जो संविधान के अनुच्छेद 46 में निर्दिष्ट समाज के कमजोर वर्गों के सांविधानिक और विधिक अधिकारों की प्रोन्नति और संरक्षण हेतु अखंड कार्य करने के लिए अनुच्छेद 51क में अन्तर्विष्ट मूल कर्तव्यों को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर विख्यात हो। निकाय (कालेजियम) के प्रत्येक सदस्य की पदावधि 5 वर्ष होनी चाहिए।

उसके अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से संबंधित कालेजियम में गैर सरकारी संघटक वही बना रहना चाहिए किन्तु इसकी पदेन सदस्यता में परिवर्तन करके राज्यपाल, मुख्य मंत्री, उच्च न्यायालय के 5 ज्येष्ठ न्यायाधीश और विधान सभा के अध्यक्ष को शामिल किया जा सकता है। अनुच्छेद 124 और अनुच्छेद 217 में आवश्यक संशोधन किए जाने होंगे किन्तु एक और उपबंध भी किया जाना चाहिए कि, यथासंभव, ऐसे निकायों (कालेजियम) के विनिश्चय सर्वसम्मत और शीघ्र होने चाहिए और ये विनिश्चय सरकार पर आबद्धकर होने चाहिए। इस दृष्टिकोण का एक तत्व जिसका विशेष रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए—इसलिए नहीं कि इस बात का उल्लेख किया गया है अपितु इसलिए कि इस बात का विशेष रूप से विलोप किया गया है, अर्थात् यह कि उक्त विचारक, इस कालेजियम में संगठित विधिज्ञ परिषदों को प्रतिनिधित्व देने के पक्ष में नहीं है।

6.15 भारतीय विधिज्ञ परिषद् ने सन् 1979 में अपनी यह राय व्यक्त की थी कि समाज के सभी वर्ग, विधिज्ञ परिषदों के सदस्य, आदि ये सभी उन व्यक्तियों के बारे में निर्णय लेने के लिए भलीभांति योग्य हैं जिन्हें उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त किया जाना चाहिए और इसलिए उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के चयन और नियुक्ति से संबंधित किसी भी माडल में किए जाने वाले किसी सुधार या रूपांतरण में संगठित विधिज्ञ परिषद् का पर्याप्त प्रतिनिधित्व अवश्य होना चाहिए[3]।

6.16 यूनाइटेड किंगडम में, जहां कि न्यायाधीशों का चयन करने और उनको नियुक्त करने की शक्ति निर्विवादतः कार्यपालिका में निहित है और सामान्यतः यह विश्वास किया जाता है कि इस पद्धति ने अब तक भलीभांति कार्य किया है, हाल ही के दिनों में यह राय व्यक्त की गई है कि उच्च न्यायपालिका में

1. तथैव देखिए साधारणतः।
2. उपेन्द्रबख्शी, "कालेशयम फार जुडिशियल पोस्ट्स" "एन इनवेस्टमेंट इन डेमोक्रेसी", दि टाइम्स आफ इंडिया, 5 अगस्त, 1986।
3. एन०एम० माधव मेनन, "जुडिशियल अपाइंटमेंटस एण्ड ट्रांसफर्स," 8 जे० बी० सी०आई० 137।

नियुक्ति के लिए न्यायाधीशों के चयन के विषय में लार्ड चान्सलर की सहायता करने के लिए एक सलाहकार-निकाय होना चाहिए । सन् 1972 में न्यायपालिका से संबंधित "जस्टिस सब कमेटी" ने यह सिफारिश की थी कि यद्यपि लार्ड चान्सलर के पास नियुक्ति संबंधी मशीनरी का नियंत्रण बना रहना चाहिए फिर भी उसके इस कार्य में उसकी सहायता नियुक्ति संबंधी एक छोटी सलाहकार समिति द्वारा की जानी चाहिए । इस समिति की निश्चित संरचना का उल्लेख रिपोर्ट में नहीं किया गया है । इस समिति की संरचना से संबंधित सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न के बारे में राय यह थी कि इस समिति में ला सोसाइटी के, विधिज्ञ परिषदों के, विधि-शास्त्रीय वकीलों के, और न्यायपालिका के प्रतिनिधि होने चाहिए और संभवत: कुछ ऐसे साधारण सदस्य भी होने चाहिए जो चयन प्रक्रियाओं में कुशल उच्च प्रशिक्षित और अनुभवी कार्मिक अधिकारी हों[1] । प्रस्तावित स्कीम के अंतर्गत, हितबद्ध निकाय, नियुक्ति समिति के समक्ष अपनी-अपनी सिफारिशें पेश कर सकते हैं और यहां तक कि न्यायिक नियुक्तियां पाने के इच्छुक व्यक्ति भी इस समिति के समक्ष अपने नाम प्रस्तुत कर सकते हैं । लार्ड चान्सलर इस समिति की सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र होगा और यहां तक कि वह ऐसे किसी व्यक्ति का चयन करने के लिए भी स्वतंत्र होगा जिसका नाम समिति द्वारा सिफारिश की गई अनुसूची में नहीं पाया जाता है । किन्तु ऐसी दशा में उस पर समिति की सिफारिश पर विचार करने की और समिति के समक्ष अपने उम्मीदवारों के नाम समिति की टिप्पणियों के लिए प्रस्तुत करने की बाध्यता होगी और वह उनसे सलाह किए बिना कोई नियुक्तियां करने में अथवा समिति के सदस्यों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों पर भलीभांति विचार किए बिना नियुक्तियां नहीं कर सकेगा । पहले भी, वर्ष 1918 में "मशीनरी आफ गवर्नमेंट कमेटी" नामक एक समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह सिफारिश की थी कि गृह मंत्रालय को न्याय मंत्रालय बना दिया जाना चाहिए और न्यायाधीशों के पद के लिए व्यक्तियों की सिफारिशें करने के संबंध में लार्ड चान्सलर के लिए एक समिति से परामर्श करना अपेक्षित होना चाहिए जिस समिति में प्रधान मंत्री, न्याय मंत्री, भूतपूर्व लार्ड चान्सलर और लार्ड मुख्य न्यायमूर्ति होने चाहिए। अत: लार्ड चान्सलर की सहायता करने के लिए एक समिति स्थापित करने से संबंधित वादविवाद लगभग आधी शताब्दी से अधिक समय से चला हुआ है । यह स्वीकार कर लिया जाना चाहिए कि कुछ लोगों की यह भी राय है कि "सब कमेटी" द्वारा यथा प्रस्थापित न्यायिक पदों की नियुक्ति की पद्धति में कोई परिवर्तन करना आवश्यक नहीं है । तथापि, कोर्टस् ऐक्ट, 1971 द्वारा नई स्कीम प्रारंभ किए जाने के पश्चात् जानकार व्यक्ति इस दृष्टिकोण से सहमत रहे हैं कि सुधार से संबंधित प्रश्न पर बड़ी सावधानीपूर्वक विचार किया जाना चाहिए और यह कि विद्यमान पद्धति में कुछ संशोधन आवश्यक हैं । समिति ने वरिष्ठ न्यायालयों, सर्किट न्यायपीठों और अवर न्यायालयों में नियुक्तियों से संबंधित प्रश्न की भी समीक्षा की है । जो लोग परिवर्तन का समर्थन करते हैं वे यह प्राख्यान करते हैं कि वर्तमान प्रक्रिया अत्यंत-गोपनीय बना दी गई है और यह कि नियुक्तियों की स्वीकृति और अस्वीकृति कारणों द्वारा समर्थित नहीं होती है । उनका कहना है कि चयन प्रक्रिया साध्य और निष्पक्ष ही नहीं होनी चाहिए, अपितु ऐसी दिखाई देनी चाहिए । इस प्रक्रिया में आत्मपरकता बहुत अधिक है क्योंकि यह सारी की सारी लार्ड चान्सलर की राय पर निर्भर करती है । एक समिति के लिए प्रस्ताव के संदर्भ में यह आशंका व्यक्त की गई थी कि विनिश्चय करने वाला ऐसे व्यापक आधार वाला निकाय समर्थन-प्रचार को प्रोत्साहित करेगा और प्रभावित करने वाले समूहों को जन्म देगा । यह भय भी व्यक्त किया गया कि चूंकि समिति के सदस्यों की राय में अंतर हो सकता है इसलिए लालच लेकर खरीदने की प्रवृत्ति अनिवार्य बन जाएगी । समिति की संरचना के बारे में भी कुछ शंकाएं व्यक्त की गई थीं ।

6.17 संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति ने संयुक्त राज्य अपील न्यायालय में नियुक्ति के लिए सर्वोत्तम अर्हित व्यक्तियों के नामों की सिफारिश करने हेतु एक 'सर्किट जजेज नॉमिनेटिंग कमीशन' की स्थापना की है। राष्ट्रपतीय आदेश के अधीन तेरह पैनल स्थापित किए जाने होते हैं। प्रत्येक पैनल में उसके सभापति को शामिल करते हुए, 11 से अधिक सदस्य नहीं होंगे और इसमें महिला और पुरुष दोनों प्रकार के सदस्य, अल्प संख्यक समूह के सदस्य, और वकीलों तथा गैर-वकीलों के लगभग बराबर संख्या के सदस्य शामिल होंगे। प्रत्येक पैनल के कृत्य का और चयन के लिए अनुसरण किए जाने हेतु मानक का उल्लेख स्वयं उसी आदेश में किया गया है। संक्षिप्तत:, चयन के लिए मानक इस प्रकार है कि जिस व्यक्ति की सिफारिश की जाती है उसकी अवस्थिति बहुत अच्छी होनी चाहिए, उसकी निष्ठा और उच्च चरित्र के बारे में अच्छी ख्याति होनी चाहिए, उसका स्वास्थ्य भी अच्छा होना चाहिए, उसमें अति

1 शीमन स्ट्रीट, "जजेज आन ट्रायल" ; "ए स्टडी आफ दि एपाइंटमेंट एण्ड एकाउन्टेबिलिटी आफ इंग्लिश जुडिशियरी", 393-404 (1976)।

विशिष्ट विधिक योग्यता होनी चाहिए और उसमें विधि के अधीन समान न्याय के प्रति प्रतिबद्धता भी होनी चाहिए[1] ।

6.18. जुलाई, 1977 में किसी समय आस्ट्रेलिया के मुख्य न्यायमूर्ति ने इस पक्ष का पोषण किया था कि आस्ट्रेलिया में एक न्यायिक नियुक्ति समिति स्थापित करने का अब सही समय आ गया है। यह दृष्टिकोण इस भावना की पृष्ठभूमि से सुपरिचित था कि न्यायाधीशों के चयन और नियुक्ति से संबंधित आस्ट्रेलियाई पद्धति में राजनीतिक प्रभाव के लिए गुंजाइश है। इस भावना को दूर करने के लिए, नियुक्ति, एक न्यायिक नियुक्ति समिति की सिफारिश द्वारा या उसकी सिफारिश के अनुसरण में की जानी चाहिए। इस समिति में न्यायाधीश, वकील और कुछ सामान्य व्यक्ति होने चाहिएं[2] ।

6.19 इसी प्रकार न्यायालयों से संबंधित 'रायल कमीशन' ने, जिसके अध्यक्ष न्या० बीटल थे और जो बाद में न्यूजीलैंड के गवर्नर-जनरल बने, यह सिफारिश की कि एक न्यायिक आयोग को उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति को शामिल करते हुए सभी न्यायिक नियुक्तियों पर विचार करना चाहिए[3] ।

6.20 अतः यह निष्कर्ष अनिवार्य है कि विद्यमान माडल में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने होंगे। ये परिवर्तन मात्र परिवर्तन करने के लिए ही नहीं होंगे अपितु इन परिवर्तनों को वर्तमान स्कीम की त्रुटियों को दूर करने और इस स्कीम को क्रियात्मक रूप से सक्रिय बनाने की दृष्टि से पुरःस्थापित किया जाएगा। नया माडल इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए प्रकल्पित करना होगा।

---

1. एच०जे० इब्राहिम, "दि जुडिशियल प्रोसेस", पृ० 30 (पांचवां संस्करण) 1986.
2. गारफील्ड बार्विक, "दि स्टेट आफ आस्ट्रेलियन ला जर्नल" 480.
3. हेरी गिब्स, "दि अपाएन्टमेंट आफ जजेज", 61 आस्ट्रेलियन ला जर्नल, 7-8.

अध्याय VII

एक नया मॉडल

7.1 प्रत्येक व्यक्ति इस बात से सहमत है कि वरिष्ठ न्यायपालिका में भर्ती से संबंधित स्कीम या मॉडल या क्रियाविधि उद्देश्यों की पूर्ति करने में असफल हो गई है। वर्तमान मॉडल की प्रभावशीलता के समर्थकों ने भी यह स्वीकार किया है कि "इस स्कीम के वास्तविक कार्यकरण में त्रुटियां और खामियां सामने आई हैं और यह कि ये त्रुटियां और खामियां इस प्रकार की हैं कि वे संपूर्ण स्कीम को त्यागे बिना दूर की जा सकती हैं। अतः इन त्रुटियों और खामियों को दूर करने के लिए प्रयास किया जाना चाहिए[1]। इन विचारों के साथ पूर्व में निर्दिष्ट किए गए भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति श्री वाई० वी० चन्द्रचूड़ और श्री पी० एन० भगवती के मत भी जोड़ दिए जाने चाहिए, जो स्वयं वरिष्ठ न्यायपालिका के न्यायाधीशों के चयन और नियुक्ति की प्रक्रिया में प्रत्यक्षतः अंतर्वलित थे और जिन्होंने इस बात पर दुख प्रकट किया है कि सांविधानिक स्कीम बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी है और इसके कार्यकरण की रीती उचित समय के भीतर रिक्तियां भरना अनुज्ञात नहीं करती और न ही यह स्वतंत्र, ईमानदार और दक्ष न्यायाधीशों को आकर्षित करती है। मुख्यतः जिस रीति में यह स्कीम कार्य करती है उस रीति में नियुक्तियां करने में असाधारण विलंब की अन्तर्निहित संभाव्यताएं हैं। 1958 से लेकर 1985 तक ध्यान में लाई गई ऐसी अनेक अन्य बातें भी जुड़ गई हैं जिनसे परिणाम उत्साहजनक नहीं हैं।

7.2 क्या वर्तमान स्कीम की पुनः संरचना करना, इसमें सुधार करना या इसे पुनरुज्जिवित करना संभव है? विगत में किए गए गंभीर प्रयासों को देखते हुए कोई भी व्यक्ति इसका उत्तर खेदपूर्वक नकारात्मक स्वर में ही देगा। कोई व्यक्ति इस संबंध में दिन-प्रतिदिन गिरती हुई स्थिति की ओर अपनी आखें बंद नहीं कर सकता। अतः एक नया मॉडल प्रकल्पित किया जाना है जिसमें यह सावधानी बरतनी होगी कि इसके संघटनात्मक ढांचे में वे त्रुटियां न हों जो वर्तमान ढांचे में हैं और जिसके परिणामस्वरूप कुछ वर्षों के पश्चात् फिर वसी ही अव्यवस्था का सामना करना पड़े।

7.3 एक नया मॉडल बनाने का एक अतिरिक्त कारण भी है। वर्तमान मॉडल या स्कीम जो गत चार दशकों से प्रचलन में रही है, की नितांत असफलता के अतिरिक्त समाज के लगभग सभी वर्गों की ओर से अर्थात् उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों, दोनों, के पूर्ववर्ती मुख्य न्यायमूर्तियों, एक प्रमुख राज्य के मुख्य मंत्री, संगठित विधि व्यवसाय के नेताओं, विधि शिक्षाशास्त्रियों और न्याय की मांग करने वालों की ओर से तथा मोटे तौर पर पूरे समाज की ओर से संरचनात्मक परिवर्तन की व्यापक मांग की गई है। यह तथ्य कि हमारे प्रजातंत्र में शासनारूढ़ सरकार ने जनता की मांग के उत्तर में विधि आयोग को न्यायिक सुधारों की सिफारिश करने के विषय को प्राथमिकता देने और एक सांगोपांग विचारार्थ विषय तैयार करने के लिए कहा है—ये सब बातें न्यायदान पद्धति के सभी पहलुओं के पुनर्विलोकन के लिए तर्कसंगत कारण प्रदान करते हैं और इन पहलुओं में सबसे महत्वपूर्ण पहलू न्यायपालिका में मानवशक्ति का निवेश है। विधि आयोग न्यायदान पद्धति में संरचनात्मक परिवर्तनों की सिफारिश करते हुए पहले ही कुछ रिपोर्टें प्रस्तुत कर चुका है। प्रत्येक संरचनात्मक परिवर्तन को इसकी मानवशक्ति के लिए व्यवस्था करनी होगी। ग्राम न्यायालयों में अन्तर्वलित न्याय में सहभागिता का मॉडल पंचायती राज्य न्यायाधीशों के चयन की प्रणाली और रीति निर्धारित करते हैं[2]। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर विधियों के ओर आयात तथा निर्यात संबंधी विधियों के प्रवर्तन से उद्भूत होने वाले अनेक विवादों ने न्यायालयों के डाकेटों को जाम कर दिया है और इससे कर की भारी राशि की वसूली रुकी पड़ी है। न्याय प्रशासन को बहुविध बनाने और अड़चनों को दूर करने की दृष्टि से विधि आयोग ने केन्द्रीय कर न्यायालय की स्थापना करने के बारे में सिफारिश की है और ऐसे न्यायालय में मानवशक्ति आयोजना के बारे में विस्तृत सिफारिशें की हैं[3]। भारतीय न्यायिक सेवा के

---

1. एच० आर० खन्ना, भारत के विधि आयोग की 80वीं रिपोर्ट-1 से प्रोद्धृत।
2. भारत के विधि आयोग की 114वीं रिपोर्ट, पृ० 46।
3. भारत के विधि आयोग की 115वीं रिपोर्ट, पृ० 33।

नाम से अभिहित की जाने वाली एक अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना की सिफारिश करते हुए, न्यायिक सेवा का संपूर्ण नियंत्रण करने के लिए एक शिखर निकाय की स्थापना की सिफारिश करना भी आवश्यक हो गया है[1]। प्रसंगवश अधीनस्थ न्यायपालिका की सांगोपांग पुनर्रचना करना भी आवश्यक हो गया है जिसने मानवशक्ति आयोजन तथा सभी आनुषंगिक पहलुओं के लिए कार्य विधि तैयार करना आवश्यक बना दिया[2]। इस आधुनिक प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए कि समाज में होने वाले विकास के साथ अपने आप को बनाए रखना चाहिए, सभी स्तरों पर न्यायिक अधिकारियों के लिए एक विस्तृत प्रशिक्षण कार्यक्रम की प्रकल्पना की गई थी और इसके बारे में सिफारिशें भी की गई थीं[3]। इन पहलुओं से निपट रही विद्यमान संस्थाएं वर्तमान स्थिति का सामना नहीं कर सकी। इन सिफारिशों को एक पक्का रूप और आकार देने के लिए तथा इन्हें क्रियाशील बनाने के लिए एक निकाय (तंत्र) की स्थापना पूर्वानुमान है। स्पष्टत: इस निकाय (तंत्र) में साधारणत: ऐसे विशेषज्ञ होने चाहिए जिनकी न्यायिक पृष्ठभूमि हो और न्यायिक शिक्षण, न्यायिक आचरण और न्यायिक शालीनता हो।

7.4 अत: यह प्रतीत होता है कि यदि इस देश में न्याय पद्धति की संरचना पिरामीडीय है तो निम्न स्तर से लेकर उच्चतम स्तर तक इस संरचना से निपटने के लिए एक केन्द्रीय निकाय (तंत्र) प्रकल्पित और स्थापित किया जाना होगा। वर्तमान सांविधानिक स्थिति के अधीन, विभिन्न शक्ति-केन्द्र न्यायपालिका के संबंध में कार्य करते हैं और यह व्यवस्था कभी-कभी द्वैधता उत्पन्न कर देती है। भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायपालिका के संबंध में कार्य करने वाले शक्ति-केन्द्रों की अधिकारिता के क्षेत्र को अभ्यांकित करते हुए अनेक निर्णय दिए गए हैं[4]। न्यायपालिका के संबंध में कार्य करने वाले शक्ति-केन्द्रों के बीच मतभेद ने मुकद्दमेबाजी को जन्म दिया। यह कहना तो कठिन होगा कि अब तक सभी धूमिल क्षेत्रों के बारे में विचार कर लिया गया है। अत: अब अत्यन्त आवश्यकता इस बात की है कि एक ऐसा निकाय (तंत्र) प्रकल्पित किया जाए जिसमें न्यायपालिका के कार्यों से संबंधित सभी शक्तियों को केन्द्रित किया जा सके। वर्तमान में यह शक्ति एक ही व्यक्ति को प्रदान की गई है। यह बात खतरनाक होने के अतिरिक्त, इसके प्रयोग ने ऐसी अनेक स्थितियां उत्पन्न कर दी हैं जिन्होंने न्यायपालिका को अधिकाधिक अप्रभावी बना दिया है। भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के अलावा, न्यायपालिका से संबंधित समस्याओं को सुलझाने में स्वयं न्यायपालिका की सहभागिता बड़ी मामूली सी है। एक सहभागिता के मॉडल के स्वीकृत किए जाने की अधिक संभावनाएं हैं क्योंकि इसमें भाग लेने वालों के बीच किया गया विचार-विमर्श कुछ सीमा तक मनमानी कार्रवाई के विरुद्ध एक ढाल की व्यवस्था करता है।

7.5 मोटे तौर पर कहा जाए तो यह विकल्प दो माडलों के बीच में है अर्थात् : सुधारों सहित वर्तमान मॉडल या एक नया मॉडल जो प्रकल्पित किया जा रहा है। वर्तमान माडल, जिस पर इस रिपोर्ट में व्यापक रूप से विचार-विमर्श किया गया है, न्यायाधीशों के चयन और नियुक्ति के विषय में तथा न्यायपालिका के संबंधी कार्य करने के विषय में कार्यपालिका को अभिभावी शक्तियां प्रदान करता है। सांविधानिक आदेश यह था कि कार्यपालिका और न्यायपालिका को सभी पहलुओं से पृथक् कर दिया जाए[5]। संविधान का लक्ष्य न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करना है और इस बात को कार्यरूप में परिणित करने का अर्थ है कार्यपालिका से स्वतंत्रता देना है। वरिष्ठ न्यायपालिका के न्यायाधीशों को नियुक्त करने और उनका स्थानांतरण करने की शक्ति कार्यपालिका में निहित है और इस शक्ति का एकमात्र बंधन विभिन्न कृत्यकारियों से परामर्श करने का है। यद्यपि, यह परामर्श बहुत अर्थपूर्ण और सारवान हो सकता है किन्तु ऐसे मामले भी बहुत हैं जहां कि यह कहा गया है कि परामर्श करने के कर्तव्य का उस समय भलीभांति निर्वहन हो जाता है, यदि जिस व्यक्ति से परामर्श किया जाना अपेक्षित है उसे समस्या की सूचना दे दी जाती है और उसके उत्तर की एक समुचित अवधि के लिए प्रतीक्षा कर ली जाती है और तत्पश्चात् उसकी अवहेलना कर दी जाती है क्योंकि यह सही तौर पर ही कहा गया है कि परामर्श, सहमति नहीं है। संविधान के कार्यकरण से यह प्रकट हुआ है कि मुख्य न्यायमूर्तिगण कार्यपालिका की दृढ़ कार्रवाई का मुकाबला नहीं कर सके हैं और ऐसे मामले

1. भारत के विधि आयोग की 116वीं रिपोर्ट, पृ० 67।
2. भारत के विधि आयोग की 118वीं रिपोर्ट पृ० 13, 40।
3. भारत के विधि आयोग की 117वीं रिपोर्ट।
4. उपरोक्त पाद टिप्पण सं० 4, पृ० 25।
5. भारत का संविधान, अनुच्छेद 50।

में भी हैं जहां कि मुख्य न्यायमूर्ति अपने दृष्टिकोण पर बल देने की स्थिति में भी हैं वहां भी वे अपने दृष्टिकोण में पूर्णतः आत्मपरक हो सकते हैं। ये सभी पहलू न्यायपालिका जैसी संस्था की समृद्धि के लिए सहायक नहीं हैं।

7.6 अतः एक नए मॉडल की प्रकल्पना करनी होगी। संपूर्ण संसार की प्रवृत्तियां यह उपदर्शित करती हैं कि जहां वरिष्ठ न्यायपालिका में न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति उच्चस्थ कार्यपालिका में निहित हैं, वहां भी निर्णयकारी प्रक्रिया के साथ अधिक से अधिक व्यक्तियों को सहयोजित करके शक्ति को विकेन्द्रित करने का अभियान है। इंग्लैंड में "न्यायपालिका उप-समिति", अमेरिका में "सर्किट न्यायाधीश नामनिर्देशन आयोग" और परिसंघीय न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति से संबंधित आयोग, आस्ट्रेलिया में शक्ति के विकेन्द्रीकरण का अभियान तथा न्यूजीलैंड में ऐसा ही प्रयोग--ये सभी यह उपदर्शित करते हैं कि सभी की प्रवृत्ति ऐसा निकाय स्थापित करने की ओर है जिसमें न्यायपालिका को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हो। भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ऐसा मॉडल प्रकल्पित करने पर विचार किया जा सकता है।

7.7 क्षणभर के लिए भी सुझाव यह नहीं दिया गया है कि ऐसे निकाय से कार्यपालिका को अप-वर्जित रखा जाना चाहिए। ऐसे निकाय के विचार-विमर्श में और निर्णयकारी प्रक्रिया में कार्यपालिका को अपनी बात कहने का अधिकार होना चाहिए। ऐसा नहीं चाहा गया है कि न्यायपालिका की समस्याओं से निपटते समय कार्यपालिका को अलग रखा जाए। कार्यपालिका को सहभागिता मॉडल में अवश्य भाग लेना चाहिए और अपना योगदान करना चाहिए, यह इसलिए भी क्योंकि कार्यपालिका के पास किसी भी व्यक्ति या स्थिति से संबंधित सुसंगत सभी विवरण का पता लगाने और उनकी जांच करने के व्यापक साधन होते हैं, किन्तु अब एक ऐसा समय आ गया है जब कि इसके वीटों के अधिकार को, यदि पूर्णतः समाप्त नहीं किया जाए, तो पर्याप्ततः कम अवश्य किया जाना अपेक्षित है। ऐसे निकाय को समुचित शब्दों में "राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग" (नेशनल जूडिशियल सर्विस कमीशन) कहा जा सकता है।

7.8 न्यायपालिका के पक्ष को प्रतिष्ठित स्थान देते हुए विभिन्न हिताभिलाषियों का प्रतिनिधित्व करने वाला एक विस्तृत आधार वाले 'राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग' की आज अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसे राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग की संरचना और कृत्यों के विवरण पर सूक्ष्म रूप में विचार करना होगा। यह आयोग ऐसा आयोग होना चाहिए जो इस आलोचना का उत्तर दे सके कि वरिष्ठ न्यायपालिका में की जाने वाली भर्ती और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के स्थानांतरण के विषय में न्यायालयों द्वारा सांविधानिक स्कीम का जो निर्वचन किया जाता है वह कार्यपालिका के पक्ष में आनत होता है। संसार भर के अंग्रेजी-भाषी प्रजातांत्रिक देशों में वरिष्ठ न्यायपालिका में नियुक्तियां करने की शक्ति का उपभोग कार्यपालिका करती है। इन सभी देशों में, इसी क्षेत्र में कार्यपालिका की स्थिति को निर्बल बनाने की एक नई प्रवृत्ति स्पष्टतः परिलक्षित होती है। विभिन्न हितबद्ध समूहों का प्रतिनिधित्व करने वाले एक निकाय की व्यवस्था करके शक्ति के विकेन्द्रीकरण का एक विकल्प के रूप में सुझाव दिया गया है। एक सुझाव यह है कि नियुक्तियां करने की शक्ति ऐसी होनी चाहिए जिसमें सब का भाग हो अर्थात् यह कि व्यक्तिगत वस्तु-परक राय की बजाय ऐसे व्यक्तियों द्वारा आंतरिक विचार-विमर्श और चर्चा के पश्चात् बनाई गई एक निकाय की राय होनी चाहिए, जिन व्यक्तियों के बारे में यह समझा जाता है कि उन्हें बातों की पूर्ण जानकारी है। ऐसा दृष्टि-कोण कार्यपालिका की प्रधान भूमिका को कम कर देगी। विधि आयोग की विचार-धारा भी इसी प्रवृत्ति से पर्याप्ततः प्रभावित है। वर्तमान विचारधारा कार्यपालिका के विरुद्ध झुकाव की प्रतिक्रिया नहीं है। विचार-धारा यह है कि एक ऐसा निकाय प्रकल्पित किया जाए जहां कि शक्ति में सांझेदारी हो जिससे कि शक्ति प्रदान करने के उद्देश्यों को प्रभावी रूप से पूरा किया जा सके। इस बारे में कोई विवाद नहीं किया जा सकता कि ज्ञानवान व्यक्तियों के बीच किए गए एक सुविचारित निर्णय के स्वीकार किए जाने की, ऐसे विनिश्चय के स्वीकार किए जाने की तुलना में, अधिक संभावना है जो विनिश्चय ठोस कारणों के समर्थन के बिना किया गया हो, भले ही ऐसा विनिश्चय किसी पक्षपातपूर्ण बुद्धि का परिणाम न हो। इस दृष्टि से देखने पर राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग की संरचना अपने आप ही स्पष्ट हो जाती है।

7.9 ऐसे आयोग की संरचना के प्रश्न की परीक्षा करते समय विधि आयोग के मन में सबसे पहली बात यही रही है कि इसके कृत्य बहुत विस्तृत और सर्वव्यापी होने होंगे। इसी बात ने आयोग की संरचना के बारे में विधि आयोग की विचारधारा को कुछ सीमा तक रूपरेखा प्रदान की है। इस बारे में व्यक्त किए

गए विचारों ने भी, जिन्हें पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है, इस विचारधारा को रंग और रूप प्रदान किया है। संक्षेप में यह निकाय ऐसे विभिन्न हितबद्ध समूहों में से चुने गए विशेषज्ञों का निकाय होना चाहिए जो न्याय प्रशासन से घनिष्टत: सम्बद्ध रहे हों, जैसे कि न्यायाधीश, वकील, विधि शिक्षाशास्त्री और वादार्थी, आदि।

7.10 निर्विवादत: भारत का मुख्य न्यायमूर्ति ऐसे निकाय का प्रधान होना चाहिए और उन्हें इस आयोग का अध्यक्ष अभिहीत किया जाना चाहिए। उनकी इस उत्कृष्ट स्थिति को जरा भी कम नहीं किया जाना चाहिए। भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से अगली रैंक के उच्चतम न्यायालय के तीन वरिष्ठतम न्यायाधीश, न्यायालय में अपने लम्बे न्यायिक अनुभव के कारण, इस आयोग के सदस्य होने चाहिए। अध्यक्ष के पद का पूर्ववर्ती धारक भी अर्थात् वह व्यक्ति जो भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में उस पद से सेवानिवृत्त हुआ है जिस पद को अध्यक्ष ने धारण किया है, एक सदस्य होगा। यह सेवा-निवृत्त मुख्य न्यायमूर्ति, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के लिए विशेष रूप से उपयोगी होगा। उच्च न्यायालयों के तीन मुख्य न्यायमूर्ति भी, मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में अपनी ज्येष्ठता के अनुसार, इस आयोग के सदस्य होंगे। भारत सरकार का विधि और न्यायमंत्री, अपने पद के कारण इसका सदस्य होगा। वह उच्चस्थ स्तर अर्थात् कार्यपालिका का प्रतिनिधित्व करता है। भारत का महान्यायवादी (अटर्नी जनरल) इसका पदेन सदस्य होगा। विधिज्ञ परिषद् के एक नेता के रूप में जो किसी प्रश्नास्पद निर्वाचन पद्धति के कारण नेता नहीं है, वह पर्याप्त रूप से विधिज्ञ परिषद् के हितों का प्रतिनिधित्व कर सकता है। एक उत्कृष्ट विधि-शिक्षाशास्त्री भी इस आयोग का सदस्य होगा। इस प्रकार इस (आयोग) निकाय में ग्यारह व्यक्ति होंगे और इसे, उन व्यापक कृत्यों को देखते हुए जिनका निर्वहन इसे करना पड़ेगा, अनिर्यंत्रिणीय नहीं कहा जा सकता। आयोग की ऐसी संरचना, जिसकी इसमें सिफारिश की गई है, न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधिज्ञ परिषद् और विधि-शिक्षाशास्त्रियों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देती है क्योंकि न्यायपालिका के कृत्यों से व्यापक रूप से प्रभावित होने वाले ये ही हितबद्ध समूह हैं। अंतिम हितबद्ध समूह जिसका इस आयोग में प्रतिनिधित्व नहीं किया गया है, वे न्यायार्थी अर्थात् वादार्थी हैं। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए आयोग में इस समूह को प्रतिनिधित्व दिया जाना वांछनीय नहीं होगा।

7.11 चूंकि यह निकाय उच्च न्यायालयों के लिए न्यायाधीशों के चयन और उनकी नियुक्ति के प्रश्न पर अनन्यत: विचार करेगा इसलिए प्रश्न यह है कि उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की क्या भूमिका होनी चाहिए जिस उच्च न्यायालय में रिक्ति हुई है और उस राज्य के मुख्य मंत्री की क्या भूमिका होनी चाहिए जिस राज्य में उच्च न्यायालय है। आज जैसी कि स्थिति है, इन दोनों महानुभावों की इस विषय में महत्वपूर्ण भूमिका है। क्या इनको पूर्णत: अपवर्जित कर दिया जाना चाहिए ? ऐसा कदम बहुत ही क्रांतिकारी कदम होगा। उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को, जिसे उच्च न्यायालय के प्रशासनिक पक्ष के संबंध में भी कार्रवाई करनी होती है, उस व्यक्ति के चयन के विषय में कुछ कहने का अधिकार होना चाहिए जो उसका सहकर्मी बनेगा। इससे किसी प्रकार का विवाद खड़ा नहीं हो सकेगा और यह उच्च न्यायालय के सुचारु कार्यकरण को सुनिश्चित करेगा। अगला महत्वपूर्ण हितबद्ध व्यक्ति, जिसकी वर्तमान में एक परामर्शदात्री हैसियत है, राज्य का राज्यपाल है जो मुख्य मंत्री की सलाह पर कार्य करता है। उच्च न्यायालय के प्रभावी कार्यकरण में राज्य के मुख्य मंत्री का हित होता है और उसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। और जब एक बार मुख्य मंत्री को किसी विचाराधीन प्रस्ताव पर अपने विचार व्यक्त करने का अवसर दिया जाता है तो राज्यपाल के परामर्श को अभिमुक्ति दी जा सकती है। अत: इस नई स्कीम को क्रियात्मक दृष्टि से प्रभावी बनाने के लिए 'राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग' को, किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के चयन और नियुक्ति के संबंध में विचार करते समय, उस उच्च न्यायालय के जिसमें रिक्ति उत्पन्न हुई है और जो भरी जा रही है, मुख्य न्यायमूर्ति को तथा उस राज्य के जिसमें उच्च न्यायालय स्थित है मुख्य मंत्री को अवश्य सहयोजित करना चाहिए। इस बात से राज्य के मुख्य मंत्री को और राज्य की कार्यपालिका को विधिज्ञ परिषद् तथा भारतीय न्यायिक सेवा, दोनों में से, विचाराधीन व्यक्तियों के गुणागुण अथवा अन्यथा के बारे में अपनी राय व्यक्त करने का अवसर मिल जाएगा।

7.12 इस आयोग के कृत्य बड़े व्यापक क्षेत्र को लागू होंगे। अत: किए जाने वाले कार्य पर निर्भर करते हुए यह आयोग अपने कृत्यों का प्रभावी ढंग से निर्वहन करने के लिए समाज के विभिन्न वर्गों के विशेषज्ञों को सहयोजित कर सकेगा। इस आयोग को नियुक्त करने की शक्ति, स्पष्ट रूप से भारत के राष्ट्रपति में निहित होनी चाहिए।

7.13 'राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग' को सौंपे जाने वाले कर्तव्यों, कृत्यों या कार्यों में निम्नलिखित सम्मिलित होने चाहिएं :

(1) वरिष्ठ न्यायपालिका अर्थात् उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में नियुक्त किए जाने वाले व्यक्तियों का चयन और उनके नामों की सिफारिश करना। इस कार्य की पूर्ति करने में यह आयोग नियुक्ति के लिए उपलब्ध अनेक व्यक्तियों में से चयन करने का मापदंड और पैमाना प्रकल्पित कर सकता है। मोटे तौर पर इस मापदंड में निम्नलिखित शामिल किए जाने चाहिएं :

(i) सांविधानिक प्रक्रिया और सांविधानिक दर्शन में गहरा और निरन्तर बना रहने वाला विश्वास;

(ii) विधि के जटिल प्रश्नों से निपटने की विधिक योग्यता और विधिक कुशाग्रता;

(iii) एक महान व्यक्तित्व, ख्याति, अविवाद्य निष्ठा, सच्चरित्र और प्रबल स्वतंत्रता वाला व्यक्ति;

(iv) मूल्यों का मापक्रम और समाज की अपेक्षित आवश्यकताओं के प्रति जागरूकता। ये उदाहरण के लिए हैं और अंतिम नहीं हैं।

(2) भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना करने के लिए आयोग को ऐसे साधन और उपाय प्रकल्पित करने का, प्रोन्नतियां प्रदान करने के लिए परीक्षाएं आयोजित करने से संबंधित मशीनरी स्थापित करने का तथा विभिन्न स्रोतों से आने वाले व्यक्तियों को एक समेकित सेवा में समायोजित करने का कर्तव्य सौंपा जाना चाहिए[1]।

(3) इस आयोग को आयु सहित पात्रता सम्बन्धी अर्हताएं इत्यादि विनिर्दिष्ट करते हुए अधीनस्थ न्यायपालिका में भर्ती के लिए रीतियां प्रकल्पित करनी चाहिएं।

(4) आजकल न्याय दान के लिए अधिकरण स्थापित करने का एक अभियान जारी है, जैसे कि प्रशासनिक अधिकरण और निकट भविष्य में राष्ट्रीय श्रम आयोग, केन्द्रीय शिक्षा अधिकरण आदि स्थापित किए जाने की संभावना है। जब कभी कोई अधिकरण स्थापित किया जाएगा तब ऐसे अधिकरण में अर्हता प्राप्त व्यक्तियों के चयन के द्वारा मानव शक्ति आयोजना की व्यवस्था करने का कर्तव्य इस आयोग का होगा।

(5) केन्द्रीय कर न्यायालय के लिए कार्मिकों का चयन करना, इस आयोग के कृत्यों में से एक कृत्य होगा।

(6) न्यायिक अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के लिए एक केन्द्रीय अकादमी की स्थापना करना और विधि आयोग[2] द्वारा सिफारिश किए गए रूप में क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित करना भी इस आयोग के कर्तव्यों में से एक कर्तव्य होगा[3]।

(7) भारत के उच्चतम न्यायालय के अनेक विनिश्चयों के परिणामस्वरूप, अधीनस्थ न्यायपालिका का नियंत्रण उच्च न्यायालय में निहित है। जैसा कि प्रायः कहा गया है, न्यायपालिका से संबंधित संविधान के उपबंध न्यायपालिका की स्वतंत्रता को कार्यपालिका के हस्तक्षेप से सुरक्षित करने के लिए प्रकल्पित किए गए थे। इसी के परिणामस्वरूप, अधीनस्थ न्यायपालिका के किसी सदस्य के विरुद्ध आनुशासनिक कार्यवाही यद्यपि यह औपचारिकतः राज्यपाल के नाम में की जाती है, किन्तु सारतः और सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए यह कार्यवाही उच्च न्यायालय के द्वारा या उच्च न्यायालय द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी अधिकारी के द्वारा की जाती है[4]। यदि कोई व्यक्ति ऐसी कार्यवाही के परिणामस्वरूप अवचार का दोषी पाया जाता है तो उच्च न्यायालय दंड की मात्रा विनिश्चित करता है और राज्यपाल को उच्च न्यायालय की सिफारिश के अनुसार कार्रवाई करनी पड़ती है। अब यदि अधीनस्थ न्यायपालिका का कोई सदस्य उच्च

---

1. भारत के विधी आयोग की 118वीं रिपोर्ट, पृ० 13, 40.
2. शमशेर सिंह बनाम भारत संघ (1977) 2 एस सी सी 831.
3. भारत के विधि अयोग की 117वीं रिपोर्ट, पृ० 40.
4. संविधान सभा वादविवाद, जिल्द 8, पृ० 232.

न्यायालय के विनिश्चय की शुद्धता को प्रश्नगत करना चाहता है तो उसे उच्च न्यायालय के न्यायिक खंड में पिटीशन फाइल करनी होती है। इस संबंध में यह शिकायत की गई है कि जब पूर्ण न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय अपने प्रशासनिक खंड के तौर पर यह विनिश्चय करता है कि आरोप साबित हो गया है तथा दंड की मात्रा भी अवधारित कर देता तो दोषी न्यायिक अधिकारी के लिए इसी निष्कर्ष को उच्च न्यायालय के न्यायिक खंड में चुनौती देना बड़ा दुविधापूर्ण कार्य हो जाता है। इस प्रकार से प्रायः यह भावना जन्म लेती है कि उपर्युक्त कार्रवाई तो एक ऐसी अपील करने के समान है जैसे जुलियस-सीज़र के निर्णय के विरुद्ध अपील सीज़र की पत्नी के समक्ष करना। वस्तुतः यह शिकायत निराधार नहीं है। यद्यपि ऐसा कहने में हमारा आशय किसी उच्च न्यायालय का कोई असम्मान करना नहीं है। यह शिकायत उस दशा में पर्याप्त रूप से दूर की जा सकती है यदि 'राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग' न्यायपालिका के सदस्यों में से ही एक ऐसे छोटे से निकाय की स्थापना कर देता है, जिसे न्यायिक आनुशासनिक समिति कहा जा सकता है, जिसके समक्ष उच्च न्यायालय के प्रशासनिक खंड के सामने प्रस्तुत किए गए प्रशासनिक विषयों में किए गए विनिश्चयों को प्रश्नगत किया जा सके। इस प्रकार से यह आयोग सामयिक आवश्यकताओं को भी पूरा करेगा। अतः ऐसी समिति की स्थापना कराना आयोग के कृत्यों में से एक कृत्य होना चाहिए।

'राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग' का एक नाभिकीय कार्यालय, एक स्थायी सचिवालय और अपने कृत्यों को पर्याप्त रूप से और दक्षतापूर्वक पूरा करने के लिए अपेक्षित कर्मचारिवृन्द होंगे।

7.14 एक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से विस्तृत विचार-विमर्श करने पर इस संबंध में शंका उठाई गई थी कि सिफारिशों के बारे में आयोग के समक्ष प्रस्ताव सर्वप्रथम कौन रखेगा। उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर स्पष्ट किया कि हर हालत में इस समय मुख्य न्यायमूर्ति ही इस प्रकार के प्रस्तावों का प्रारंभ करने का कार्य करता है और उच्च न्यायालयों के विधि-व्यवसायी अधिवक्ताओं तथा जिला न्यायपालिका के सदस्यों के बारे में उसकी घनिष्ठ जानकारी को देखते हुए इस कार्य के लिए वह सबसे उत्तम व्यक्ति है। अतः उनके अनुसार, मुख्य न्यायमूर्ति ही किसी प्रस्ताव को प्रारंभ करने के लिए प्रधानतः उपयुक्त व्यक्ति है और कम से कम तुलना करने पर राज्य के न तो मुख्य मंत्री को और न राज्यपाल को ही प्रस्ताव प्रारंभ करने के लिए विधिज्ञ परिषद् के किसी सदस्य की या जिला न्यायपालिका के किसी सदस्य की भी क्षमता, दक्षता और योग्यता के बारे में कोई पर्याप्त जानकारी होगी। उन्होंने अपनी यह आशंका प्रकट की कि जब ऐसा कोई आयोग स्थापित किया जाता है तब यह बिल्कुल संभव हो सकता है कि ऐसे आयोग के सदस्यों को भी किसी राज्य विशेष से उपलब्ध होने वाले प्रतिभावान व्यक्तियों के बारे में ज्ञान न हो और इसलिए नियुक्ति के संबंध में विचार किए जाने के लिए किसी प्रस्ताव का प्रारंभ करना कुछ समस्याएं उत्पन्न कर देगा। अब यह निःसंदेह सत्य है कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को अधिवक्ताओं और जिला न्यायपालिका के सदस्यों में से प्रतिभावान व्यक्तियों के उपलब्ध होने के बारे में घनिष्ठ जानकारी होती है और यदि वह अपने किसी पूर्वाग्रह को छोड़ कर निष्पक्ष रूप से कार्य करता है तो नियुक्ति करने के लिए एक युक्तियुक्त, निष्पक्ष और साधारणतः स्वीकार्य प्रस्ताव प्रारंभ करने के लिए उस पर निःसंदेह निर्भर रहा जा सकता है। तथापि, अनुभव यह बताता है कि बहुत पहले संविधान सभा में वाद-विवाद के दौरान भी इस बात पर ध्यान दिया गया था कि चूंकि मुख्य न्यायमूर्ति भी एक मानव ही है अतः उसमें भी वे सब त्रुटियां हो सकती हैं जो किसी अन्य प्राणी में होती हैं। ऐसे मामले भी प्रकाश में आए हैं जहां कि एक प्रकार के स्थानीय पक्षपात या पूर्वाग्रह या अदृश्य किन्तु निपट जातीय विचारणाएं सामने आएं, जिन्होंने विधिज्ञ परिषद् एवं जिला न्यायपालिका क्षेत्रों के व्यक्तियों को अपवर्जित करते हुए, चयन करवाए हैं। इस संदर्भ में, डा० अम्बेडकर ने क्या कहा है जरा उसे याद करें जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि यद्यपि मुख्य न्यायमूर्ति एक बहुत ही प्रतिष्ठित व्यक्ति होता है फिर भी वह हर प्रकार की त्रुटियों वाला एक व्यक्ति ही है और वह ऐसी सभी भावनाओं वाला व्यक्ति है जो सामान्य व्यक्तियों में होती हैं और इस प्रकार से डा० अम्बेडकर ने नियुक्तियों के मामले में मुख्य न्यायमूर्ति को वस्तुतः एक प्रकार से वीटो का अधिकार देने से साफ इन्कार कर दिया था। अतः इस दृष्टिकोण को कायम रखना संभव नहीं है, जैसा कि मुख्य न्यायमूर्ति का मत था कि प्रस्ताव को प्रारंभ करने की बात उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के अनन्य अधिकार में होनी चाहिए जिस उच्च न्यायालय में रिक्ति हुई है। इस पहलु की परीक्षा एस०पी० गुप्ता बनाम भारत संघ के मामले में भी की गई थी। इस बात को एक तरफ रखते हुए भी, प्रस्तावित आयोग को किसी प्रस्ताव को प्रारंभ करने के अधिकार से संबंधित पुरातन विचार के द्वारा पंगु नहीं बना दिया जाना चाहिए। कोई व्यक्ति आयोग को पत्र लिख कर नाम का प्रस्ताव कर सकता है। आयोग उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति

से भी प्रस्ताव मांग सकेगा । आयोग के सदस्यों का इस विषय में अपना विशेषज्ञीय ज्ञान हो सकता है जिसे वे प्रयोग में ला सकते हैं । अतः उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए व्यक्तियों की सिफारिश करने से संबंधित प्रस्ताव का आरंभ करने के लिए राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग को अपनी ही प्रक्रिया प्रकल्पित करने की छूट दी जानी चाहिए । यह पहलू उस समय कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं करता जबकि इसका संबंध उच्चतम न्यायालय से हो क्योंकि आयोग के अध्यक्ष के रूप में भारत का मुख्य न्यायमूर्ति इस परिस्थिति से निपटेगा और इस कार्य में उसकी सहायता उसके कुछ सहकर्मी करेंगे ।

7.15 अब केवल विचार के लिए दो पहलू रह जाते हैं । निःसंदेह, संविधान का एक छोटा सा संशोधन यहां इस रिपोर्ट में की गई सिफारिशों को प्रभावी बनाने के लिए अपरिहार्य हो जाता है । प्रस्तावित संशोधनों का उल्लेख अंतिम अध्याय में किया गया है । नया मॉडल उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के संबंध में नियुक्त प्राधिकारी के रूप में भारत के राष्ट्रपति की वर्तमान स्थिति को बनाए रखेगा । वर्तमान स्थिति की बजाए, भारत का राष्ट्रपति, न्यायाधीशों को राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग की सिफारिशों पर नियुक्त करेगा । इस मॉडल को प्रभावी बनाने के लिए, यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि आयोग की सिफारिश भारत के राष्ट्रपति के लिए आबद्धकर होगी । हां, यह हो सकता है कि कोई भी व्यक्ति सभी संभावित भूलों के लिए सावधानी नहीं बरत सकता । उन व्यापक स्रोतों को देखते हुए जो भारत के राष्ट्रपति की शक्ति में हैं, उसके पास किसी भी व्यक्ति के बारे में जानकारी एकत्रित करने की व्यापक मशीनरी हो सकती है । यदि राष्ट्रपति सिफारिश प्राप्त होने के पश्चात् कोई जांच प्रारंभ करना ठीक समझता है और उसके ध्यान में ऐसी सूचना लाई जाती है जो आयोग के विनिश्चय को प्रभावित कर सकती है तो वह आयोग की सिफारिश को वापस आयोग के पास, उसे उपलब्ध जानकारी के साथ, भेज देगा ।

7.16 यदि जानकारी के प्रकाश में संबंधित सिफारिश पर पुनः विचार करने के पश्चात् आयोग अपनी सिफारिश को दोहराना उचित समझता है तो राष्ट्रपति उस व्यक्ति को नियुक्त करेगा । यही उपबंध है जो नए मॉडल को पूरी तरह क्रियाशील और प्रभावी बनाएगा ।

7.17 इस संबंध में जिस एकमात्र पहलू की समीक्षा की जानी शेष है, वह समय का पहलू है । आजकल नियुक्तियां किए जाने में अत्यन्त विलम्ब होता है । मुश्किल से कभी ही कोई उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय अपने पूरे न्यायाधीशों की संख्या के साथ कार्य करता है और रिक्तियां भरने से नष्ट हुए मानव-दिन न्याय की मांग करने वाले नागरिकों को एक न्यायालय की उपलब्धता से वंचित करते हैं तथा इस प्रकार से बकाया मामलों की संख्या अनिवार्यतः बढ़ती जाती है । अतः राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग, सेवा-निवृत्ति के कारण होने वाली रिक्तियों को भरने के लिए अपने प्रस्ताव, रिक्ति होने से छह मास पूर्व प्रारंभ करेगा और मृत्यु या त्याग-पत्र जैसे अन्य मामलों में, रिक्ति होते ही प्रारंभ करेगा । उद्देश्य यह होना चाहिए कि इस कारण से एक भी मानव-दिन की हानि न होने पाए । जब न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाई जाती है तो आयोग को व्यक्तियों के नामों की सिफारिश करने के लिए तत्काल कदम उठाना चाहिए ताकि न्यायालय पूरी संख्या में अपने सभी न्यायाधीशों के साथ मिल कर कार्य कर सके । यह भी बिल्कुल स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि यदि आयोग की यह राय है कि उस उच्च न्यायालय की विधिज्ञ परिषद् के पात्र अधिवक्ता, जहां कोई रिक्ति हुई है, न्यायाधीश का पद स्वीकार करने में अनिच्छा प्रकट करते हैं तो आयोग के लिए संपूर्ण देश में चारों तरफ दृष्टि डालने और देश में कहीं से भी व्यक्तियों का चयन करने की स्वतंत्रता होगी । इस बात से प्रत्येक उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण में एक स्वस्थ परिवर्तन आएगा और यह कदम उस संकुचित या क्षेत्रीय और संकीर्ण दृष्टिकोण का उत्तर होगा जो कि हाल ही में न्यायपालिका में परिलक्षित हो रहा है ।

अध्याय VIII

तकनीकी प्रगति और इसका उपयोग

8.1 अब तक जिस नियुक्ति-पद्धति का अनुसरण किया गया है उससे एक बात उभर कर सामने आई है जो विशेषज्ञों के मन को कुरेदती रही है कि इसके गंभीर विश्लेषण से कोई वस्तु-परक मानदंड प्रकाश में नहीं आए हैं। नियुक्ति के लिए प्रस्ताव का शुभारम्भ करने में उच्च न्यायालय के मुख्य न्याया- मूर्ति को अनन्य शक्ति प्रदान करने वाले समर्थकों ने इस तथ्य की अनदेखी की है कि नियुक्ति से संबंधित प्रस्तावों में आत्मपरकता का बहुत बड़ा हाथ होता है। मुख्य न्यायमूर्ति की संस्था के प्रति कोई असम्मान दर्शाए बिना, यदि एक के बाद दूसरे प्रस्ताव की समीक्षा की जाए तो निश्चित तौर से उन कारणों को सुनिश्चित करना बिल्कुल असंभव होगा कि एक व्यक्ति के नाम की सिफारिश क्यों की गई और कुछ अन्य व्यक्तियों के नाम, जो कि समान रूप से सक्षम थे, क्यों अपवर्जित कर दिए गए। इस बात को स्पष्ट करने के लिए, नामों का उल्लेख किए बिना, एक नियुक्ति की समीक्षा की जा सकती है। एक प्रमुख उच्च न्यायालय का एक न्यायाधीश 19 मार्च, 1961 को अपर न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया गया था। बाद में उसी वर्ष में उसी न्यायालय में 14 अक्तूबर, 1961 को एक अन्य न्यायाधीश की नियुक्ति की गई थी। वर्ष 1971-72 के एक सुसंगत समय पर उस न्यायालय में, जहां ये दोनों न्यायाधीश कार्य कर रहे थे, सापेक्ष स्थिति यह थी कि पहले नियुक्त किया गया न्यायाधीश संख्या 2 पर था और बाद में नियुक्त किया गया न्यायाधीश संख्या 7 पर। उस उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की परस्पर ज्येष्ठता में संख्या 7 के क्रम वाले बाद में नियुक्त किए गए न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय में 19 जुलाई, 1971 को प्रोन्नत किया गया और पहले नियुक्त किए गए तथा क्रम संख्या 2 के न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय में 28 अगस्त, 1972 को प्रोन्नत किया गया था। एक ऐसे अपेक्षाकृत कनिष्ठ न्यायाधीश को ज्येष्ठ न्यायाधीश के ऊपर चयन करने में क्या तर्क हो सकता है, जिस कनिष्ठ न्यायाधीश को न केवल एक वर्ष में प्रोन्नत ही कर दिया गया था अपितु अंत में वह भारत का मुख्य न्यायमूर्ति भी बना दिया गया ? इस उदाहरण में एकमात्र तर्क तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा, सापेक्ष गुणागुण का एक पूर्णत: आत्म- परक विश्लेषण दिखाई देता है क्योंकि मुख्य न्यायमूर्ति ने उच्च न्यायालय में अपेक्षाकृत कम अनुभव वाले और बाद में नियुक्त किए गए व्यक्ति को, सुसंगत समय पर, दीर्घ अनुभव वाले न्यायाधीश से उत्तम समझा और बाद में, थोड़े समय में ही, ज्येष्ठ न्यायाधीश को भी उच्चतम न्यायालय में ले जाया गया। क्या ज्येष्ठ न्यायाधीश को एक वर्ष पहले अनुभव कम था और उसे अतिष्ठित करना पड़ा और तत्पश्चात् एक साल में ही उसने इतना व्यापक अनुभव प्राप्त कर लिया था कि वह प्रोन्नति के लिए अर्ह हो गया ? इन प्रश्नों का कोई तार्किक स्पष्टीकरण नहीं है। एक दूसरी सुज्ञात घटना में उच्चतम न्यायालय में प्रोन्नत के संबंध में एक न्यायाधीश के मूल्यांकन के बारे में दो मुख्य न्यायमूर्तियों में अमिट मतभेद था। यह रीति उन चयनों के बारे में यह बताती है कि वे अन्तर-उच्च न्यायालय और अन्तर-उच्च न्यायालय ज्येष्ठताक्रम में चयन किए गए व्यक्ति की अवस्थिति की पूर्णत: अवहेलना करके किए गए थे। जब गहराई से इसका विश्लेषण किया गया तो एकमात्र उत्तर जो सामने आया वह यह था कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के पूर्ण आत्मपरक समाधान को छोड़कर ऐसी बातों के लिए और कोई तर्कपूर्ण स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सकता। ऐसी स्थिति बराबर तब भी दृष्टिगोचर होती है जबकि किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति उसी उच्च न्यायालय से संबद्ध वकीलों को चुनता है। किसी मुख्य न्यायमूर्ति की ईमानदारी और निष्ठा पर किसी भी प्रकार से कोई आक्षेप किए बिना, इसी प्रकार के अनेक उदाहरण उद्धृत किए जा सकते हैं। कम से कम एक उच्च न्यायालय में तो यह बताया गया है कि विधिज्ञ परिषद् के कुछ सदस्यों ने उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के पद को स्वीकार करने से इसलिए इंकार नहीं किया कि वे उस प्रस्ताव को स्वीकार करने के इच्छुक नहीं थे बल्कि इसलिए कि वह प्रस्ताव उस प्रस्ताव के बाद किया गया था जबकि उससे कनिष्ठ अधिवक्ता को यह प्रस्ताव पहले दिया जा चुका था। यह बात केवल एक उच्च न्यायालय के संबंध में ही नहीं अपितु एक से अधिक न्यायालयों के बारे में भी सही है। व्यक्तिगत अधिमानता प्रकट करने वाली ऐसी आत्मपरकता न तो न्यायिक परंपरा के स्वस्थ विकास के लिए और न ही एक संस्था के रूप में न्यायपालिका को शक्तिशाली बनाने के लिए सहायक है।

8.2 प्रश्न यह है कि क्या इस स्थिति में कुछ सुधार किया जा सकता है ? दूसरे शब्दों में, क्या आत्मपरक वैयक्तिक अधिमानों के इस नासूर से निपटने के लिए कोई सुधारवादी उपाय हैं ? जैसा कि पहले बताया जा चुका है, विशेषज्ञों से मिलकर बनाए गए एक निकाय द्वारा विचार-विमर्श किया जाना ही इसका एकमात्र उत्तर हो सकता है। किन्तु स्वयं इस निकाय को भी, व्यक्तियों की तुलना में किसी निर्णय पर पहुंचने के लिए सूचना या सामग्री की कमी हो सकती है। क्या आधुनिक तकनीकी प्रगति इस बारे में सहायता कर सकती है ?

8.3 आज स्थिति यह है कि नियुक्ति के लिए चुने जाने वाले व्यक्ति के नाम की सिफारिश सामान्यतः ऐसे अस्पष्ट शब्दों में की जाती है जैसे 'एक अच्छा न्यायाधीश है', 'संविधान के कार्यकरण में पैठ रखने वाला एक दक्ष न्यायाधीश है' आदि आदि। कभी-कभी यह कहा जाता है कि चुना जाने वाला न्यायाधीश अच्छे सामान्य ज्ञान, दृढ़ स्वतंत्रता और अविवाद्य निष्ठा वाला व्यक्ति है। यदि उक्त राय व्यक्त करने वाले व्यक्ति से यह पूछा जाए कि उसने यह निष्कर्ष कैसे निकाला तो इस बारे में स्पष्टतः शून्य का ही पता लगेगा। कभी-कभी यह उत्तर भी मिलते हैं कि किसी भिन्न व्यक्ति ने मुख्य न्यायमूर्ति को इस प्रकार की सूचना दी थी। यह कार्यविधि अवैज्ञानिक है और इसमें अनिश्चितता का अवगुण है। यहां इसी अवगुण को दूर किया जा सकता है।

8.4 अब समय आ गया है कि उन आधुनिक तकनीकी प्रगतियों का जो एक संस्था के रूप में न्यायपालिका से आगे निकल गई हैं, लाभ उठाया जाना चाहिए। केन्द्र के न्याय मंत्रालय में तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक कंप्यूटर-कार्यक्रम होना चाहिए। विधिज्ञ परिषद् के एक सदस्य पर या जिला न्यायपालिका के सदस्य पर जब भी वह 35-40 की आयु समूह में हो, सूक्ष्म नजर रखी जानी चाहिए और एकत्रित किए गए आंकड़ों को उच्च न्यायालय के कम्प्यूटर में तथा विधि और न्याय मंत्रालय के तत्संबंधी कंप्यूटर में भरा जाना चाहिए। जिला न्यायपालिका के सदस्य के बारे में उसके द्वारा सुनाए गए प्रत्येक निर्णय का और जिस निर्णय पर उच्च न्यायालय में अपील के प्रक्रम पर विचार किया गया है, उस निर्णय का उस न्यायाधीश की योग्यता, वह गति जिससे उस ने उस मामले का निपटारा किया है, विधि के सक्षम ज्ञान, शैली, निष्कर्ष की तार्किकता की दृष्टि से तथा इस दृष्टि से भी वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाना चाहिए कि दिया गया वह निर्णय संविधान के दर्शन के अनुरूप है अथवा नहीं---ये सब बातें लगातार कंप्यूटर में भरी जाती रहनी चाहिएं।

8.5 विधिज्ञ परिषद् के किसी सदस्य पर विचार करते समय उस प्रत्येक मामले का जिसमें वह हाजिर होता है और बहस करता है, उसके द्वारा दी गई दलीलों की प्रकृति का जो कि सुनाए गए निर्णय में से एकत्रित की जा सकती है, यथासंभव, उसी सीमा तक विश्लेषण किया जाना चाहिए और कंप्यूटर में भरा जाना चाहिए। एक अतिरिक्त स्तंभ की व्यवस्था व्यक्तित्व, आचरण, न्यायालय में व्यवहारतः, आदि के लिए भी होनी चाहिए।

8.6 जब उस न्यायालय में रिक्तियां भरने का समय आए तब न्यायपालिका के सदस्य और विधिज्ञ परिषद् के सदस्य दोनों से संबंधित कंप्यूटर का मुद्रित पन्ना निकाला जाना चाहिए और राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिससे कि उसके पास सर्वोत्तम उपलब्ध प्रतिभावान व्यक्ति को चुनने के संबंध में अपना निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त आंकड़े उपलब्ध हो जाएं। इन आंकड़ों की पुष्टि उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति और उसी उच्च न्यायालय के तीन ज्येष्ठतम न्यायाधीशों द्वारा व्यक्त की गई राय से हो सकेगी। विधि आयोग का यह मत है कि यह कार्यविधि आत्मपरकता या ऐसे व्यक्तिगत अधिमानों को पूर्णतः दूर कर देगी जो किसी भी कारण या तर्क से समर्थित नहीं हैं और किसी न किसी रूप में, निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पर्याप्त सामग्री की व्यवस्था करेगी।

8.7 उपरोक्त पैरा में दर्शित कार्यविधि न्यायिक नियुक्तियों के क्षेत्र में हाल ही की एक अस्वस्थ प्रवृत्ति के विरुद्ध भी एक प्रभावी नियंत्रण का कार्य करेगी। ऐसे अधिवक्ता भी हैं जो विधि व्यवसाय में अच्छी तरह स्थापित हो जाने और अच्छी आय होने के कारण न्यायाधीश का पद स्वीकार करना नापसंद करते हैं, फिर भी अनेक ऐसे लोग हैं जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बनने के लिए आतुर होते हैं। नियुक्ति के विषय में इस प्रत्यक्ष विरोधाभास के गंभीर सामाजिक कारण हैं जिनका उस प्रक्रम पर विश्लेषण करना आवश्यक नहीं है। निर्विवाद तथ्य यह है कि अनेक राज्यों में अनेक वकील उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बनने के लिए आतुर हैं, और स्थानीय परंपरा पर निर्भर करते हुए, कुछ राज्यों में तो बहुत अच्छे विधि-व्यवसाय

वाले वकील भी न्यायाधीश बनने के इच्छुक हैं किन्तु जैसे ही न्यायाधीश बनाए जाने के लिए विचारार्थ किसी नाम का पता लगता है वैसे ही गन्दे और दूषित अभिकथनों वाले सनाम और गुमनाम पत्र प्राधिकारियों के पास पहुंचने लग जाते हैं। यह बात विधि आयोग की कल्पना की उड़ान नहीं है अपितु आयोग के पास इस संबंध में ठोस सामग्री है। इस सामग्री का यहां स्पष्ट उल्लेख इसलिए नहीं किया जा रहा है क्योंकि इससे कुछ पदासीन न्यायाधीशों को कठिनाई उत्पन्न हो जाएगी। किन्तु विधि आयोग के इस प्रक्कथन को कोई भी व्यक्ति प्रश्नगत नहीं कर सकेगा कि जैसे ही किसी नाम के बारे में यह रिपोर्ट प्रकाशित होती है कि वह नाम न्यायाधीश के पद के लिए विचाराधीन है वैसे ही वह व्यक्ति निपट मिथ्यापवाद और आलोचना का शिकार बन जाता है और जब यह बात किसी महिला उम्मीदवार के बारे में उठती है तो यह मिथ्यापवाद उसके चरित्र को कलंकित करने वाला होता है और उसका जीना दूभर कर देता है। अंतिम विश्लेषण करने पर, न्यायाधीश का पद भले ही दिया जाए या न दिया जाए किन्तु किसी व्यक्ति के नाम के विचाराधीन होने के कारण किया गया मिथ्यापवाद विधिज्ञ परिषद् के कुछ सदस्यों के लिए अवांछित कठिनाई उत्पन्न कर देता है। इस बात की संभावना से भी सरलता से इंकार नहीं किया जा सकता कि इसी वजह से कुछ लोगों को बड़ी हानि हुई है।

8.8 अब यदि कंप्यूटर-कार्यक्रम प्रारंभ किया जाता है और विधि परिषद् के उदीयमान सदस्यों तथा न्यायिक सेवा के सदस्यों पर निगाह रखी जाती है तो उसके नाम पर समुचित प्रक्रम पर विचार करते समय उसके बारे में मिथ्यापवाद करने के अवसर काफी कम हो जाएंगे। संबंधित व्यक्ति के वैज्ञानिक निर्धारण के लिए वस्तुपरक सामग्री प्राप्त करने के अलावा इस कार्य विधि का वहां और अधिक लाभ होगा।

8.9 जब एक बार ऐसी आत्मपरकता और ऐसे व्यक्तिगत अधिमानों को समाप्त कर दिया जाता है जिनके समर्थन में कोई वस्तुपरक आंकड़े नहीं हैं और एक व्यक्ति की बजाय जब एक निकाय किसी प्रस्ताव पर विचार करता है तथा सिफारिश करता है, तो ऐसी सिफारिश, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, लगभग आबद्धकर ही होगी। इससे स्पष्ट है कि विश्वसनीयता की जो खाई आज चौड़ी हो गई है वह यदि पूर्णतः भरी नहीं जाती है तो संकुचित तो हो ही जाएगी। मनमानेपन के इस आरोप को, जो आत्मपरक प्रकृति के व्यक्तिगत अधिमानों पर तुरन्त लगाया जा सकता है, सरलता से खंडन किया जा सकेगा और इस आरोप की गुंजाइश ही नहीं रहेगी जब आत्मपरक आंकड़ों से संबद्ध निकाय नियुक्ति के प्रश्न पर विचार करेगा। अतः यह नया माडल उस बात का समाधान करेगा जो सांविधानिक तौर पर अपेक्षित है अर्थात् यह कि वरिष्ठ न्यायपालिका से प्रथम श्रेणी के, दक्ष, विज्ञ और अविवाद्य निष्ठा वाले लोग कार्य करेंगे जिनका चयन ऐसे निकाय के द्वारा किया जाएगा जिस पर मनमानेपन का आरोप नहीं लगाया जा सकता। विधि आयोग तदनुसार सिफारिश करता है।

अध्याय IX

उपसंहार

9.1 इस रिपोर्ट में जिस संरचना की सिफारिश की गई है यदि यह स्वीकार्य है तो इसके कारण संविधान में संशोधन करना आवश्यक होगा। उच्चतम न्यायालय का और उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त करने की शक्ति, जो आज भारत के राष्ट्रपति में निहित है, राष्ट्रपति में ही निहित बनी रहेगी। इस नई व्यवस्था के अधीन यह शक्ति 'राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग' के परामर्श से प्रयुक्त की जानी होगी। इस सीमा तक, संविधान के अनुच्छेद 124 और अनुच्छेद 217 का संशोधन करना होगा। इसी प्रकार से, अनुच्छेद 233 और 234 का भी संशोधन करना होगा। ऐसा करने के दो तरीके हैं। एक सुझाव यह था कि उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय, दोनों में नियुक्तियां किए जाने के संबंध में आवश्यक संशोधन द्वारा इस आयोग से परामर्श का उपबंध किया जा सकता है जिसके साथ यह परंपरा भी होगी कि इस आयोग की सिफारिश आबद्धकर होगी। निःसंदेह जहां ऐसी कोई बात राष्ट्रपति के ध्यान में आती है जिसके बारे में यह प्रतीत होता है कि आयोग ने उसकी अनदेखी की है और इस कर्तव्य के निर्वहन में राष्ट्रपति की सहायता मंत्री परिषद् के मंत्रियों द्वारा की जाएगी वहां ऐसे प्रस्ताव को वापस आयोग को भेजा जा सकेगा और आयोग उस पहलु पर विचार करेगा। किन्तु यदि पुनर्विचार के पश्चात् आयोग अपनी उस सिफारिश को दोहराता है तो उसी व्यक्ति की नियुक्ति करने के अलावा राष्ट्रपति के पास कोई और विकल्प नहीं होगा। दूसरा सुझाव यह था कि एक परंपरा के द्वारा यह परामर्श अनौपचारिक हो सकता है। किन्तु इतना स्वयं में ही संभवतः पर्याप्त नहीं होगा क्योंकि स्थानीय मुख्य मंत्री और राज्यपाल से किए जाने वाले परामर्श का अनुच्छेद 217 से लोप करना पड़ेगा। भले ही ऐसा आयोग स्थापित किया जाता है और इस आयोग के साथ परामर्श को परंपरा द्वारा आज्ञापक बना दिया जाता है तो भी अनुच्छेद 124 में भी कुछ संशोधन करना आवश्यक होगा। न्यायपालिका के व्यापक हित में ऐसा करना अनिवार्य होगा।

ह०	ह०	ह०
डी० ए० देसाई	एस० सी० घाऊस	वी० एस० रमादेवी
अध्यक्ष,	सदस्य	सदस्य-सचिव

नई दिल्ली,
1 जुलाई, 1986

उपाबन्ध I

डी० ए० देसाई

अध्यक्ष

अर्ध०शा० पत्र सं० 44(1) 186-वि०आ०

भारत सरकार,

विधि आयोग, शास्त्री भवन,

नई दिल्ली।

10 दिसम्बर, 1986

प्रिय न्यायमूर्ति,

इस समय विधि आयोग दो समस्याओं की समीक्षा कर रहा है, अर्थात् :—

(i) न्यायपालिका के सभी स्तरों पर भर्ती से संबंधित कठिनाई; और

(ii) भर्ती को लागू होने वाले कानूनी नियमों के अलावा तत्संबंधी कार्यविधि और मापदंड।

इस दिशा में अनुभवजन्य अनुसंधान और वैज्ञानिक विश्लेषण की स्कीम बनाने के लिए मैं आपसे निम्नलिखित जानकारी, यथासंभवशीघ्र, किन्तु इस मास के अंत से पूर्व, भेजने के लिए अनुरोध करता हूं।

I. न्यायिक क्रमपरंपरा के निम्नतम काडर में भर्ती साधारणतः राज्य के लोक सेवा आयोग के द्वारा की जाती है :

(1) क्या आयोग को अधिसूचित रिक्तियों के संबंध में नए उम्मीदवारों से आवेदन के रूप में पर्याप्त उम्मीदवार प्राप्त हो जाते हैं ?

(2) क्या आयोग समुचित रूप से योग्य उम्मीदवारों की भर्ती करने की स्थिति में है और क्या चयन का क्षेत्र पर्याप्ततः इतना व्यापक है कि अवांछनीय उम्मीदवारों को अस्वीकार किया जा सकता है ?

(3) यदि पर्याप्त आवेदन प्राप्त नहीं होते हैं तो इसके कारण क्या हैं।

II. आपके राज्य में न्यायपालिका के मध्य स्तर पर अर्थात् जिला न्यायाधीशों के स्तर पर क्या सीधी भर्ती के लिए कोई उपबंध हैं ? यदि ऐसा कोई उपबंध है तो कृपया निम्नलिखित के बारे में जानकारी दें :—

(1) कोटा;

(2) अनुपात;

(3) भर्ती की अवधि;

(4) आवेदनों की पर्याप्तता; और

(5) उन उम्मीदवारों की उपयुक्तता जो उपलब्ध हैं। यदि इस संबंध में कुछ कठिनाई अनुभव की गई है तो कृपया उस कठिनाई के कारणों का अलग से उल्लेख करें।

III. (1) उच्च न्यायालय में विधिज्ञ परिषद् के सदस्यों में से भर्ती के मामले में क्या आपका ऐसा कोई अनुभव है कि वस्तुतः योग्य और दक्ष वकील, जिन्होंने युक्तियुक्तः अपना अच्छा व्यवसाय स्थापित कर लिया है, उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के पद को स्वीकार करने के इच्छुक नहीं हैं ?

(2) क्या हाल ही में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की परिलब्धियों और सेवा की शर्तों को पुनरीक्षित करने में किया गया प्रयास न्यायपालिका में पद ग्रहण करने के लिए पर्याप्त आकर्षण का काम करेगा ?

IV. उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करने के लिए उम्मीदवारों के नामों की सिफारिश करने से पूर्व किन-किन सुसंगत विचारणाओं को ध्यान में रखा गया है, जैसे कि :–

(i) आय का पहलू;

(ii) विधि व्यवसाय में हैसियत;

(iii) जाति;

(iv) आरक्षण का सिद्धांत या ऐसी कोई अन्य विचारणा जिसका किसी उम्मीदवार के नाम की सिफारिश करने और उसे चयन करने के विनिश्चय पर प्रभाव पड़ता है ।

V. विनिर्दिष्टत: मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या स्थानांतरण करने की शक्ति को, जो कि संविधान के अनुच्छेद 222 द्वारा प्रदान की गई है और जिसका निर्वचन उच्चतम न्यायालय ने **भारत संघ बनाम सांकल चन्द हिम्मतलाल सेठ और एस० पी० गुप्ता बनाम भारत संघ** में किया है, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद स्वीकार करने में विधिज्ञ परिषद् के सदस्यों पर कुछ हतोत्साहात्मक प्रभाव पड़ा है । दूसरे शब्दों में, क्या आपके समक्ष ऐसे कोई ठोस उदाहरण आए हैं जहां कि विधिज्ञ परिषद् का कोई सदस्य न्यायाधीश का पद स्वीकार करने के लिए तैयार था किन्तु उसने इससे मात्र इस आधार पर इंकार कर दिया कि उसे बिना उसकी सम्मति के स्थानांतरित किया जा सकता है । यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो इस जानकारी के संबंध में कोई ठोस दृष्टांत भी दिया जाए । इस संबंध में एक अतिरिक्त आवश्यक जानकारी यह दें कि क्या कर निर्धारण आदेश प्रस्तुत किए जाने का आग्रह किया जाता है ?

VI. (1) आपकी राय में क्या आपके उच्च न्यायालय में कार्यरत न्यायाधीशों की वर्तमान संख्या संस्थित किए जाने वाले मामलों से निपटने के लिए और, समयानुसार, बकाया मामलों की संख्या को कम करने के लिए पर्याप्त है ?

(2) क्या आपके न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या निम्नलिखित के अनुसार नियत की जाती है :

(i) संस्थित किए गए मामलों के अनुसार; या

(ii) जनसंख्या के अनुसार; या

(iii) राज्य के क्षेत्र के अनुसार ।

(3) क्या आपके न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या का पुनर्विलोकन किया जाता रहा है और यदि हां तो किस अंतराल के पश्चात् ऐसा किया जाता है ?

(4) अंतिम पुनर्विलोकन कब हुआ था ?

VII. (1) क्या अनुच्छेद 224 के अनुसरण में आप के न्यायालय ने बढ़े हुए कार्यभार या बकाया मामलों से निपटने के लिए कभी अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति की है ?

(2) अपर न्यायाधीशों को पुष्ट करवाने में औसतन कितना समय लग जाता है ? इस बात का उल्लेख भी कर दिया जाए, यदि आपके उच्च न्यायालय के किसी अपर न्यायाधीश की पुष्टि नहीं की गई थी ।

VIII. सभी ने यह स्वीकार किया है कि उच्च न्यायालय में रिक्तियां भरने में बहुत और असाधारण विलंब होता है :

(1) आपके अनुसार इस विलंब के क्या कारण हैं ?

(2) यह विलंब किस-किस प्रक्रम पर होता है ?

(3) क्या आप अगले वर्ष के दौरान होने वाली रिक्तियों के संबंध में तुरन्त सिफारिश करने का कदम उठाते हैं ?

(4) मैं आपसे अपनी उक्त सिफारिश के संचलन का पता करने के लिए निवेदन करूंगा, जबकि आपकी सिफारिश को आपके कार्यालय से चलकर राज्य के मुख्य मंत्री, राज्यपाल के माध्यम से होते हुए भारत के मुख्य न्यायमूर्ति तक पहुंचती है ।

(5) क्या मतभेदों को सुलझाने के लिए मुख्य मंत्री और आपके बीच कोई व्यापक विचार-विमर्श किया जाता है ?

(6) क्या ये विचार-विमर्श सहायक होते हैं ?

(7) क्या मुख्य मंत्री की ओर से नियुक्ति के संबंध में आपको उम्मीदवारों के नाम प्राप्त होते हैं ?

(8) क्या आपके समक्ष ऐसे मामले भी आए हैं जहां कि आपके द्वारा की गई सिफारिश राज्य के मुख्य मंत्री और राज्यपाल द्वारा अनुमोदित कर दी गई थी तथा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति ने भी उसके बारे में स्वीकृति दे दी थी और फिर भी संघ सरकार ने इस उम्मीदवार को नियुक्त नहीं किया ? मैं आपसे उम्मीदवारों के नाम सहित विनिर्दिष्ट उदाहरण दिए जाने का निवेदन करता हूं ।

IX. रिक्तियां भरने में विलंब होने के कारण निपटाए गए मामलों की संख्या में कमी आ सकती है। इसलिए क्या आप 1 जनवरी 1980 से लेकर आज तक प्रत्येक रिक्ति के भरने में हुए विलंब की सूचना और बकाया पड़े मामलों तथा इनकी बढ़ती हुई संख्या पर पड़ने वाले प्रभाव से संबंधित जानकारी सारणी के रूप में देने की कृपा करेंगे ।

X. यथासंभव उत्तम रूप में यह जानकारी देने के पश्चात्, मैं आपसे आपके उच्च न्यायालय के न्यायाधीश और मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में अपने व्यापक अनुभव के अनुसार ऐसे समाधानों के बारे में सुझाव देने के लिए निवेदन करूंगा जो नियुक्ति की इस पद्धति को अधिक लचीला, नमनीय और परिणामोन्मुख बना सकें ।

सादर,

भवदीय

(डी० ए० देसाई)

सेवा में,

सभी उच्च न्यायालयों के
मुख्य न्यायमूर्ति ।

उपाबंध-II

वर्ष 1981 से 1985 तक उच्चतम न्यायालय के (मुख्य न्यायमूर्ति को छोड़कर) न्यायाधीशों की संख्या दर्शाने वाला विवरण

क्रम सं०	वर्ष	न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या	न्यायपीठ में वस्तुतः प्रोन्नत न्यायाधीशों की संख्या	अवधि (से — तक)	रिक्तियां जो रिक्त पड़ी रहीं	जितनी अवधि तक रिक्तियां रिक्त पड़ी रहीं		
						वर्ष	मास	दिन
1	2	3	4	5	6	7		
1	1981	17	13	1-1-81 से 14-1-81	4	0	0	14
		17	12	15-1-81 से 27-1-81	5	0	0	13
		17	13	28-1-81 से 29-1-81	4	0	0	2
		17	15	30-1-81 से 31-1-81	2	0	11	2
2	1982	17	14	1-1-82 से 6-3-82	3	0	2	6
		17	13	7-3-82 से 31-12-82	4	0	9	25
3	1983	17	13	1-1-83 से 12-1-83	4	0	0	12
		17	12	13-1-83 से 14-3-83	5	0	2	2
		17	16	15-3-83 से 31-12-83	1	0	9	17
4	1984	17	16	1-1-84 से 24-6-84	1	0	5	24
		17	17	25-6-84 से 31-12-84	कोई नहीं	0	6	7
5	1985	17	17	1-1-85 से 8-5-85	कोई नहीं	0	4	8
		17	16	9-5-85 से 11-7-85	1	0	2	3
		17	15	12-7-85 से 16-8-85	2	0	1	5
		17	14	17-8-85 से 20-8-85	3	0	0	4
		17	13	21-8-85 से 30-9-85	4	0	1	10
		17	12	1-10-85 से 28-10-85	5	0	0	28
		17	14	29-10-85 से 31-12-85	3	0	2	3
6	1986	17	14	1-1-86 से 8-3-86	3	0	2	8
		17	13	9-3-86 से 9-5-86	4	0	0	1
		17	16	10-3-86 से 6-4-86	1	0	0	28
		17	15	7-4-86 से 14-6-86	2	0	2	8
		17	14	15-6-86 से 1-10-86	3	0	3	7

हस्ता०/-
अपर रजिस्ट्रार
भारत का उच्चतम न्यायालय

उपाबंध-III

आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय

उच्च न्यायालय में वर्ष 1980 से लेकर आज तक की अवधि के दौरान न्यायाधीशों के पदों के संबंध में उपलब्ध रिक्तियों की संख्या, इन रिक्तियों के भरे जाने वाली तारीखों और इन्हें भरने में लगे औसत समय को दर्शाने वाला विवरण

1-1-1980 को रिक्तियों की संख्या : 1+3=4

रिक्ति कब हुई	तारीख, जिसको रिक्ति भरी गई
6-1-1980	9-7-1982
1-7-1980	9-7-1982
4-7-1980	9-7-1982

वर्ष 1981 में हुई रिक्तियां : 1

4-12-1982	कोई नहीं

वर्ष 1982 में हुई रिक्तियां : 2

19-1-1982	10-12-1982
23-3-1982	10-12-1982

न्यायाधीशों की संख्या में (21 से 24) वृद्धि होने के कारण 20-9-1982 को तीन रिक्तियां हुईं।

20-9-1982	1-9-1983
20-9-1982	12-11-1983
20-9-1982	—
9-12-1982	—

वर्ष 1983 में हुई रिक्तियां : 2

न्यायाधीशों की संख्या में (24 से 26) वृद्धि होने के कारण 26-2-1983 को दो रिक्तियां हुईं।

20-2-1983	—
20-2-1983	—

वर्ष 1984 में हुई रिक्तियां : 4

9-4-1984	—
6-7-1984	—
11-7-1984	—

वर्ष 1985 में हुई रिक्तियां : 2

8-4-1985	—
19-8-1985	—

वर्ष 1986 में हुई रिक्तियां : 5

	12-7-1986
	12-7-1986
	12-7-1986
	12-7-1986
	13-10-1986

1-1-1987 को रिक्तियों की संख्या : 3

रिक्तियां भरने में लगा औसत समय : 3 वर्ष

उपाबंध--III--जारी

मुम्बई उच्च न्यायालय

उच्च न्यायालय में वर्ष 1981 से लेकर 1985 तक की अवधि के दौरान न्यायाधीशों के पदों के संबंध में उपलब्ध रिक्तियों की संख्या, इन रिक्तियों के भरे जाने वाली तारीखों को दर्शाने वाला विवरण

वर्ष	रिक्तियों की संख्या	जिस तारीख को उच्च न्यायालय में रिक्तियां हुईं
1981	कोई नहीं	कोई नहीं
1982	1	12-8-82
1983	3	30-4-83
		30-9-83
		6-10-83
1984	3	21-1-84
		9-7-84
		4-10-84
1985	4	19-3-85
		2-7-85
		22-10-85
		4-11-85

दिल्ली उच्च न्यायालय

उच्च न्यायालय में वर्ष 1981 से लेकर 1985 तक की अवधि के दौरान न्यायाधीशों के पदों के संबंध में उपलब्ध रिक्तियों की संख्या, इन रिक्तियों के भरे जाने वाली तारीखों और इन्हें भरने में लगे औसत समय को दर्शाने वाला विवरण

क्रम सं०	वर्ष 1981 से 1985 तक वर्ष-वार उपलब्ध रिक्तियों की संख्या	तारीख जिसको ये रिक्तियां हुईं	तारीख जिसको ये रिक्तियां भरी गईं	रिक्तियां भरने में लगा औसत समय	टिप्पणियां
1	2	3	4	5	6
वर्ष 1981					
	स्थायी--3	स्थायी--	स्थायी--	एक वर्ष से अधिक	
		1. 27-6-80	1. 11-9-81		
		2. 4-9-80	2. 11-9-81		
		3. 21-10-80			
	अपर--6	अपर--	अपर--		
		1. 28-5-80	1-6-81	7 मास	
		2. 18-7-80			
		3. 7-7-81			
		4. 7-7-81			
		5. 11-9-81			
		6. 11-9-81			

उपाबंध--III—जारी

दिल्ली उच्च न्यायालय—जारी

1	2	3	4	5	6
वर्ष 1982					
	स्थायी--1	स्थायी–	स्थायी–	1½ वर्ष से अधिक	
		21-10-80	7-6-82		
	अपर–6	अपर–			
		1. 18-7-80			
		2. 7-7-81			
		3. 7-7-81			
		4. 11-9-81			
		5. 11-9-81			
		6. 7-6-82			
वर्ष 1983					
	स्थायी–6	1. 10-5-83	1. 10-5-83		
		2. 10-5-83	2. 10-5-83		
		3. 10-5-83	3. 10-5-83		
		4. 10-5-83	4. 10-5-83		
		5. 19-11-83	5. 19-11-83		
		6. 19-11-83	6. 19-11-83		
	अपर–6	1. 10-5-83	1. 12-8-83 (अप०)	3 मास 2 दिन	
		2. 10-5-83	2. 12-8-83 (,,)		
		3. 10-5-83	3. 12-8-83 (,,)		
		4. 10-5-83	4. 12-8-83 (,,)		
		5. 19-11-83			
		6. 19-11-83			
वर्ष 1984					
	स्थायी–5	1. 23-2-84	1. 23-2-84	2 मास 2 दिन	
		2. 23-2-84	2. 23-2-84		
		3. 23-2-84	3. 23-2-84		
		4. 23-2-84	4. 23-2-84		
		5. 21-7-84	5. 6-9-84		
	अपर–2	1. 19-11-83	1. 1-6-84	7 मास 1 दिन	
		2. 19-11-83	2. 1-6-84		
वर्ष 1985					
	स्थायी–4	1. 9-2-85	1. 12-3-85	2 मास 3 दिन	
		2. 6-8-85	2. 29-10-85 (अप०)		
		3. 16-10-85			
		4. 22-12-85			
	अपर–2	1 12-3-85			
		2. 29-10-85 (अप०)	1-4-87		

उपाबन्ध III—जारी

गुवाहाटी (असम) उच्च न्यायालय

उच्च न्यायालय में वर्ष 1980 से लेकर 1985 तक की अवधि के दौरान न्यायाधीशों के पदों के संबंध में उपलब्ध रिक्तियों की संख्या, इन रिक्तियों के भरे जाने वाली तारीखों और इन्हें भरने में लगे समय को दर्शाने वाला विवरण

गुवाहाटी उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की रिक्तियों से संबंधित जानकारी का विवरण

रिक्ति की तारीख	जिस तारीख को रिक्ति भरी गई	रिक्तियों को भरने में लगा समय
5-4-78	20-4-81	3 वर्ष 15 दिन
11-3-79	20-4-81	2 वर्ष 1 मास 9 दिन
1-3-80	10-1-84	2 वर्ष 10 मास 10 दिन
1-3-84	21-11-84	8 मास 21 दिन
5-10-84	11-10-85	1 वर्ष 6 दिन
3-11-86	—	—
20-12-86	—	—

गुजरात उच्च न्यायालय

उच्च न्यायालय में वर्ष 1981 से लेकर 1985 तक की अवधि के दौरान न्यायाधीशों के पदों के संबंध में उपलब्ध रिक्तियों की संख्या, इन रिक्तियों के भरे जाने वाली तारीखों और इन्हें भरने में लगे औसत समय को दर्शाने वाला विवरण

स्वीकृत संख्या	1-1-1981 को विद्यमान रिक्तियों की संख्या	उपलब्ध रिक्तियों की संख्या	जिस तारीख को रिक्तियां हुई थीं	जिस तारीख को रिक्तियां भरी गईं	रिक्तियों को भरने में लगा औसत समय
18	3	1981 4	4-1-1981 19-8-1981	29-9-1981	पत्र में दिए गए कारणों से कुछ नहीं कहा जा सकता
—		1982 1	—	26-5-1982 (तीन नियुक्तियां)	
20		1983 1	15-2-1983	28-1-1983 (दो नियुक्तियां)	
			15-3-1983	21-6-1983	
			23-12-1983	5-9-1983 (दो नियुक्तियां)	
—		1984 3	14-4-1984	—	
			8-11-1984		
21		1985 4	1-2-1985	21-3-1985	
			18-12-1985		

उपाबन्ध III—जारी

हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय

उच्च न्यायालय में वर्ष 1981 से लेकर 1985 तक की अवधि के दौरान न्यायाधीशों के पदों के संबंध में उपलब्ध रिक्तियों की संख्या, इन रिक्तियों के भरे जाने वाली तारीखों और इन्हें भरने में लगे औसत समय को दर्शाने वाला विवरण

वर्ष	स्थायी न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या	अपर न्यायाधीश	आसीन	रिक्ति	रिक्ति की तारीख	रिक्ति भरने की तारीख	रिक्तियां भरने में लगा औसत समय
1	2	3	4	5	6	7	8
1981	3	2	4	1	10 अप्रैल, 1979		5 वर्ष 7 मास 17 दिन
1982	3	2	4	1	—यथोक्त—		
1983	5	—*	4	1	—यथोक्त—		
1984	5	—*	4	1	—यथोक्त—	27-11-1984	
1985	5	1*	6	—			

*सितम्बर, 1983 में भारत सरकार अपर न्यायाधीशों के दो पद सृजित करने के लिए इस शर्त पर सहमत हो गई थी कि अपेक्षित मंजूरी अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय ही जारी कर दी जाएगी। इन दोनों में से केवल एक पद ही सृजित किया गया और 27 नवम्बर, 1984 को भरा गया। दूसरा पद अभी तक न तो सृजित ही किया गया है और इसलिए भरा भी नहीं गया है।

**वर्ष 1983 की प्रथम तिमाही के लिए उन पदों को सम्यक्‌तः सृजित किया गया मान लेने पर जिनके सृजित करने के बारे में सहमति हो गई थी, केवल एक ही पद रिक्त रहा। 1983 की अंतिम तिमाही के लिए दो पद रिक्त रहे। लगभग पूरे वर्ष 1984 के लिए तीन पद रिक्त रहे। वर्ष 1985 में एक पद रिक्त रहा। इसके अतिरिक्त एक माननीय न्यायाधीश जांच आयोग (स्कैब एपल्स) के रूप में, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में अपनी नियुक्ति के पहले से, आंशिक रूप से कार्य कर रहे हैं और इस हैसियत में वह कुछ समय आयोग के कार्य में लगते रहे हैं। प्रति वर्ष जिसमें 210 कार्य दिवस होते हैं, प्रति न्यायाधीश 650 मुख्य मामलों के निपटारे के कार्यकरण मानदंड के आधार पर लगभग 3300 मुख्य मामले अधिक निपटाए जाते, यदि न्यायालय अपनी पूर्ण सदस्य संख्या सहित कार्य करता। उस स्थिति में, सिविल या दांडिक, कोई भी मामला तीन वर्ष से अधिक समय तक आज लंबित न रहता। यहां तक कि तीन वर्षीय मामलों के चौथाई मामले निपटा दिए गए होते।

जम्मू काश्मीर उच्च न्यायालय

उच्च न्यायालय में वर्ष 1980 से आज तक की अवधि के दौरान न्यायाधीशों के पदों के संबंध में उपलब्ध रिक्तियों की संख्या, इन रिक्तियों के भरे जाने वाली तारीखों और इन्हें भरने में लगे औसत समय को दर्शाने वाला विवरण

वर्ष	स्वीकृत संख्या	संदर्भगत वर्ष में उपलब्ध रिक्तियां अर्थात् जो रिक्तियां भरी नहीं गई हैं	जिस तारीख को रिक्तियां भरी गई	इन रिक्तियों को भरने में लगा औसत समय
1	2	3	4	5
1980	सात	तीन	——	——
1981	सात	तीन	——	——
1982	सात	चार		
1983	सात	चार		
1984	सात	चार	4 (दो 25-5-1984 को और दो 9-8-1984 को)	4/3 वर्ष
1985	सात	एक	एक 4-2-1985 को	एक वर्ष
1986	सात	——	एक 30-5-1986 को	2 वर्ष

कर्नाटक उच्च न्यायालय

1-1-1981 को 2 रिक्तियां थीं। उनमें से एक रिक्ति 26-10-1979 से है और दूसरी रिक्ति 6-5-1980 से है।

दो रिक्तियां 1981 में हुई। उनमें से एक रिक्ति 19-5-1981 को एक न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति के कारण और दूसरी 10-8-1981 को एक पद की मंजूरी के कारण हुई।

	भरने में लगा समय		
	वर्ष	मास	दिन
(1) 26-10-1979 को हुई रिक्ति 10-6-1981 को भरी गई	1	7	23
(2) 6-5-80 को हुई रिक्ति 11-9-81 को भरी गई	1	4	5
(3) 19-5-81 को हुई रिक्ति 11-9-81 को भरी गई	0	3	22

1-1-1982 को कोई रिक्ति नहीं थी।

26-9-1982 को एक न्यायाधीश सेवानिवृत्त हुआ और 10-11-1982 को एक न्यायाधीश का देहांत हो गया।

1982 में कोई रिक्ति नहीं भरी गई।

1-1-1983 को तीन रिक्तियां थीं।

(1) 19-8-81 को हुई रिक्ति 10-1-83 को भरी गई	1	5	0
(2) 26-9-82 को हुई रिक्ति 10-1-1983 को भरी गई	0	3	14

(3) 4-4-1983 को न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति के कारण रिक्ति हुई।

1-1-1984 को 2 रिक्तियां थीं।

(1) 10-11-82 को हुई रिक्ति 25-5-1984 को भरी गई	1	6	15
(2) 11-4-83 को हुई रिक्ति 25-5-1984 को भरी गई	1	1	14

(3) 11-11-1984 को एक न्यायाधीश की मृत्यु के कारण रिक्ति हुई।

1-1-1985 को एक रिक्ति थी।

(1) 24-10-85 को स्थानांतरण के कारण एक रिक्ति हुई।

(2) 18-12-85 को एक न्यायाधीश के सेवानिवृत्त हो जाने के कारण एक रिक्ति हुई।

1985 में कोई नियुक्ति नहीं की गई।

इस प्रकार 1-1-1986 को इस न्यायालय में माननीय न्यायाधीशों के 3 पद रिक्त थे।

"प्रति"

वी कृष्णमूर्ति

कर्नाटक उच्च न्यायालय

22-11-86

उपाबन्ध III—जारी

केरल उच्च न्यायालय

उच्च न्यायालय में वर्ष 1981 से लेकर 1985 तक की अवधि के दौरान न्यायाधीशों के पदों के संबंध में उपलब्ध रिक्तियों की संख्या, इन रिक्तियों के भरे जाने वाली तारीखों और इन्हें भरने में लगे औसत समय को दर्शाने वाला विवरण

वर्ष	वर्ष के दौरान उपलब्ध रिक्तियां	जिन तारीखों को रिक्तियां उत्पन्न हुईं	जिन तारीखों को रिक्तियां भरी गईं
1981	3	19-1-80	28-9-81
		13-3-80	23-12-82
		1-8-80	23-12-82
1982	3	18-1-82	4-8-83
		22-3-82	1-8-83
		11-10-82	11-6-84
1983	2	22-8-83	13-6-84
		20-12-83	13-6-84
1984	2	28-4-84	31-1-85
		28-4-84	31-1-85
1985	1	22-8-85	26-9-85

इन रिक्तियों के भरने में लगा औसत समय 437 दिन है।

केरल उच्च न्यायालय

24-11-86

हस्ता०/–

सहायक रजिस्ट्रार

मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय

उच्च न्यायालय में वर्ष 1981 से लेकर 1985 तक की अवधि के दौरान न्यायाधीशों के पदों के संबंध में उपलब्ध रिक्तियों की संख्या, इन रिक्तियों के भरे जाने वाली तारीखों और इन्हें भरने में लगे औसत समय को दर्शाने वाला विवरण

न्यायाधीशों की संख्या: स्थायी—20

अपर-9

वर्ष के दौरान उपलब्ध रिक्तियों की संख्या	तारीख जिसको रिक्तियां हुईं	तारीख जिसको रिक्तियां भरी गईं	रिक्तियों को भरने में लगा औसत समय
1	2	3	4
1981 स्थायी पद-रिक्तियां			
4—स्थायी	1—पद 21-2-1980 से रिक्त	पद 27-8-82 को भरा गया	2 वर्ष 3 मास और 6 दिन
4—अपर	1—पद 21-7-1980 से रिक्त	पद 27-5-82 को भरा गया	1 वर्ष 10 मास और 6 दिन
8	1—पद 10-1-81 से रिक्त	पद 2-11-82 को भरा गया	1 वर्ष 9 मास और 21 दिन
	1—पद 2-9-81 से रिक्त	पद 2-11-82 को भरा गया	1 वर्ष और 2 मास
	अपर पद पर रिक्तियां		
	3—पद 29-8-77 से रिक्त	पद 14-5-84 को भरा गया	6 वर्ष 8 मास और 14 दिन
	1—पद 29-8-77 से रिक्त	अभी नहीं भरी गई	8 वर्ष और 4 मास (दिसम्बर, 1985 तक)

उपाबन्ध III—जारी

मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय—जारी

1	2	3	4
1982 स्थायी पद-रिक्तियां			
4—स्थायी	1—पद 1-5-82 से रिक्त	पद 2-11-82 को भरा गया	6 मास और 1 दिन
	1—पद 23-7-82 से रिक्त	पद 3-6-83 को भरा गया	8 मास और 14 दिन
	1—पद 31-8-82 से रिक्त	पद 7-4-83 को भरा गया	7 मास और 7 दिन
	1—पद 15-10-82 से रिक्त	पद 20-6-83 को भरा गया	8 मास और 4 दिन
	अपर पद—रिक्तियां		
	1—पद 27-5-82 से रिक्त	पद 14-5-84 को भरा गया (21-2-83 से स्थायी पद में परिवर्तित)	1 वर्ष 11 मास और 16 दिन
	1—पद 27-5-82 से रिक्त	पद 14-5-84 को भरा गया	1 वर्ष 11 मास और 16 दिन
	1—पद 2-11-82 से रिक्त	पद 14-5-84 को भरा गया	1 वर्ष 6 मास और 11 दिन
	1—पद 2-11-82 से रिक्त	पद 14-5-84 को भरा गया	1 वर्ष 6 मास और 11 दिन
	1—पद 2-11-82 से रिक्त	पद 14-5-84 को भरा गया	1 वर्ष 6 मास और 11 दिन
1983 स्थायी पद-रिक्तियां			
1—स्थायी	1—पद 5-5-83 से रिक्त	पद 14-5-84 को भरा गया	1 वर्ष और 9 दिन
1984 स्थायी पद-रिक्तियां			
1—स्थायी	1—पद 3-1-84 से रिक्त	पद 16-5-85 को भरा गया	1 वर्ष 4 मास और 13 दिन
1985 स्थायी रिक्त पद			
3—स्थायी पद	1—पद 15-6-85 से रिक्त	पद 14-5-86 को भरा गया	11 मास
	2—पद 29-10-85 से रिक्त	पद 14-5-86 को भरा गया	6 मास और 15 दिन
	3—पद 4-11-85 से रिक्त	पद 14-5-86 को भरा गया	6 मास और 10 दिन
1986 स्थायी रिक्त पद			
2—स्थायी 5—अपर ——— 7 ———	1—पद 20-1-86 से रिक्त	पद 14-5-86 से भरा गया	3 मास और 23 दिन
	1—पद 28-8-86 से रिक्त	पद 8-1-87 को भरा गया	4 मास और 10 दिन

उपाबन्ध III—जारी

मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय—समाप्त

1	2	3	4
	अपर –रिक्त पद		
	1–अपर न्यायाधीशों के 2 पदों में से एक पद को स्थायी पद की रिक्ति में 22-5-88 से परिवर्तित कर दिया गया।	पद 10-11-86 को भरा गया	5 मास और 18 दिन
	1–अपर न्यायाधीश का पद 14-5-86 से रिक्त	पद 4-7-86 को भरा गया	1 मास और 19 दिन
	1–अपर न्यायाधीश का पद 14-5-86 से रिक्त	पद 4-7-86 को भरा गया	1 मास और 19 दिन
	1–अपर न्यायाधीश का पद 14-5-86 से रिक्त	22-1-87 को भरा गया	8 मास और 7 दिन
	1–अपर न्यायाधीश का पद 10-11-86 से रिक्त	पद 22-1-87 को भरा गया	2 मास और 11 दिन
1987	अपर न्यायाधीश का एक पद 20-8-77 से रिक्त।	अभी तक नहीं भरी गई।	
	अपर न्यायाधीशों के दो अन्य पद भरे जाने हैं। इन पदों को अनुमोदित किया जा चुका है और इनकी संस्वीकृति नियुक्ति के समय प्रदान की जाएगी। इस प्रकार कुल रिक्तियां 3 हैं।		

उड़ीसा उच्च न्यायालय

प्रत्येक रिक्ति के भरने में हुए विलंब को दर्शित करने वाला विवरण
(1-1-83 से आज तक)

वर्ष	स्वीकृत संख्या			रिक्तियों की संख्या	रिक्तियां कब से कब तक खाली रहीं	कब भरी गईं
	स्थायी/	अपर	वास्तविक संख्या			
1	2		3	4	5	6
1980	7	–	4	3	31-7-80 से 31-12-80	–
					30-9-80 से 31-12-80	–
					4-11-80 से 31-12-80	–
1981	7	–	7	3	1-1-81 से 4-1-81	5-1-81 को भरा गया
					1-1-81 से 17-9-81	18-9-81 को भरा गया
					1-1-81 से 17-9-81	18-9-81 को भरा गया
1982	7	–	6	1	4-5-82 से 31-12-82	–
1983	9*	1	6	4	31-1-83 से 31-5-83	1-6-83 को भरा गया
					31-1-83 से 31-5-83	–यथोक्त–
					1-1-83 से 17-11-83	18-11-83 को भरा गया
					1-1-83 से 31-12-83	–

उपाबन्ध III—समाप्त

उड़ीसा उच्च न्यायालय—जारी

1	2	3	4		5	6
1984	11*	1	9	4	16-7-84 से 31-12-84	—
					1-1-84 से 19-6-84 } 1-1-84 से 19-6-84 }	20-6-84 को भरा गया
					1-1-84 से 31-12-84	—
1985	11*	1	10	2	1-1-85 से 31-12-85	
					1-1-85 से 31-12-85	
1986	11*	1	9	4	20-1-86 से आज तक	—
					9-7-86 से आज तक	
					1-1-86 से 20-6-86	21-7-86 को भरा गया
					1-1-86 से 20-3-86 और 21-6-86 से आज तक	

(1) माननीय मुख्य न्यायाधीश 5-11-80 से 15-1-81

(2) माननीय मुख्य न्यायाधीश 15-3-83 से 10-8-83

(3) माननीय मुख्य न्यायाधीश 14-3-83 से 10-8-83

(4) माननीय मुख्य न्यायाधीश 1-3-86 से 30-4-86

उपाबंध क

पटना उच्च न्यायालय

1980 से 31-12-86 तक रिक्तियों के न भरे जाने के कारण नष्ट हुए न्यायाधीश-दिवसों की संख्या दर्शित करने वाला चार्ट

जिस तारीख को रिक्ति हुई	जिस तारीख को भरी गई	समय-अंतराल				
	16-4-1977 से 1-8-1979 के दौरान न्यायाधीशों की नियुक्ति में विलंब के कारण उस न्यायालय में न्यायाधीशों के 5508 मानव-दिवस नष्ट हो गए					
		वर्ष		मास		दिन
1-2-80	18-11-82	2	–	9	–	17
6-5-80	18-11-82	2	–	5	–	12
6-5-80	18-11-82	2	–	6	–	12
6-5-80	18-11-82	2	–	6	–	12
6-5-80	18-11-82	2	–	6	–	12
6-5-80	18-11-82	2	–	6	–	12
1-1-81	18-11-82	1	–	10	–	17
15-6-81	18-11-82	1	–	5	–	3
1-9-81	18-11-82	1	–	2	–	17
2-11-81	18-11-82	1	–	0	–	16
1-1-82	18-11-82	0	–	10	–	17
20-2-82	1-9-83	1	–	6	–	11
13-3-82	29-11-83	1	–	8	–	16
11-7-82	15-2-84	1	–	7	–	4
28-5-83	13-8-84	1	–	2	–	15
9-9-84	17-11-86	2	–	2	–	8
28-11-84	17-11-86	1	–	11	–	19
12-1-85	17-11-86	1	–	10	–	5
मई, 85	17-11-86	1	–	6	–	0
मई, 85	17-11-86	1	–	6	–	0

नष्ट हुए न्यायाधीश-दिवसों की कुल संख्या—13,305 दिन

1-5-86 25-6-86 14-8-86 10-9-86 13-10-86 25-11-86	सेवानिवृत्ति के कारण छह रिक्तियों में इसके अतिरिक्त तीन रिक्तियों (चार सृजित किए गए चार पदों में से), कुल मिलाकर 9 रिक्तियों में से, 9-3-1987 को केवल दो न्यायाधीश नियुक्त किए गए हैं। 7 रिक्तियां अभी भी भरी जानी शेष हैं।

उपाबन्ध क—जारी

पटना उच्च न्यायालय

वर्ष	रिक्तियों की संख्या	तारीख जिसको रिक्ति हुई	तारीख जिसको भरी गई	रिक्ति को भरने में लगा औसत समय	शेष रिक्त पदों की संख्या
1	2	3	4	5	6
1981	15	16-4-77 दो (रिक्तियां) 30-5-78, 3-1-79, 1-8-79, 1-2-80, 6-5-80 (5 रिक्तियां) 1-1-81, 15-6-81, 11-9-81 और 2-11-81	4-12-81 (4 पद)	लगभग 3 वर्ष 8 मास	11
1982	11*4	1-1-82, 20-2-82, 16-11-82 और 13-3-82	11 न्यायाधीश 18-11-82 को नियुक्त किए गए	लगभग 2 वर्ष	4
1983	4*1	28-5-83	1-9-83 और 29-11-83	लगभग 21 मास	3
1984	3*2	9-9-84 और 28-11-84	15-2-84 और 13-8-84	लगभग 17 मास	3
1985	3*1*4 पद मई, 1985 से स्वीकृत	12-1-85	—	—	8

उल्लेखनीय है कि न्यायाधीशों के चार पद मई, 1985 से मंजूर किए गए थे। इस प्रकार इस समय न्यायालय के न्यायाधीशों की सदस्य संख्या मई, 1985 से 39 है। वर्ष 1986 में, छह न्यायाधीशों के सेवानिवृत्त हो जाने और उड़ीसा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में एक न्यायाधीश का स्थानांतरण होने के कारण 7 रिक्तियां हुईं। किंतु 17-11-86 को 5 न्यायाधीश नियुक्त किए जा चुके हैं।

उपाबंध क—जारी

पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय

1 जनवरी, 1981 से 31 दिसम्बर, 1985 तक माननीय न्यायाधीशों के रिक्त रह रही रिक्तियों को दर्शित करने वाला विवरण

वर्ष	स्वीकृत संख्या			वर्ष के दौरान समय-समय पर उपलब्ध रिक्तियों की संख्या	तारीख जिसको रिक्तियां हुईं	तारीख जिसको वर्ष के दौरान रिक्तियां भरी गईं	इन रिक्तियों को भरने में लगा औसत समय
	स्थायी	अपर	जोड़				
1	2			3	4	5	6
1981	17	6	23	4 1-1-81 से 30-8-81 तक 3 31-8-81 से 31-12-81 तक 4 14-12-81 से 31-12-81 तक	(i) 19-3-80 से माननीय न्यायमूर्ति श्री गुरुनाम सिंह के सेवानिवृत्त हो जाने पर। (ii) 15-10-80 से माननीय न्यायमूर्ति श्री हरबंस लाल के सेवानिवृत्त हो जाने पर। (iii) 25-10-86 से मा० न्याय० श्री एस० एस० सिद्धू के सेवानिवृत्त हो जाने पर। (iv) 22-8 1972 से सृजित पद भरा ही नहीं गया। (v) 14 12-1981 से मा० न्या० श्री बी०एस० ढिल्लों की मृत्यु हो जाने पर।	31-8-81 को मा० न्या० श्री बी० एस० यादव की नियुक्ति हो जाने पर ।	न्यायाधीशों की नियुक्तियों के संबंध में भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय, न्याय विभाग, नई दिल्ली द्वारा जारी की गई नियुक्ति संबंधी अधिसूचनाएं यह उपदर्शित नहीं करती हैं कि किस विशेष रिक्त स्थान पर मान० न्यायाधीश की नियुक्ति की गई और इस प्रकार ऐसी परिस्थितियों में यह बताना संभव नहीं है कि इन रिक्तियों को भरने में औसतन कितना समय लगा।

1982	17	6	23	4 3	1-1-82 से 17-6-82 तक 18-6-82 से 21-12-82 त		18-6-1982 से मा० न्या० श्री एस० एस० सोढी की नियुक्ति हो जाने पर।
न्यायाधीशों के छह अतिरिक्त पदों को स्थायी न्यायाधीशों के रूप में संपरिवर्तित किया गया-देखिए-भारत सरकार का राजपत्र 61/1/82-न्या०, तारीख 4-11-1982							
1983	23	—	3	3 2 1 2 3	1-1-83 से 2-1-83 तक 3-1-83 से 1-2-83 तक 2-2-83 से 8-4-83 तक 9-4-83 से 28-11-83 तक 29-11-83 से 31-12-82 तक	(i) 9-4-83 से मा०न्या० सी० एस० टिवाना के सेवा निवृत्त हो जाने पर।	3-1-1983 से मा० न्या० श्री के० पी० एस० संधु की नियुक्ति हो जाने पर।
						(ii) मा० न्या० श्री एस० एस० संधावालिया को पटना उ० न्या० के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में स्थानांतरित किए जाने के परिणामस्वरूप।	2-2-83 से मा० न्या० श्री पृथ्वीपाल सिंह की नियुक्ति हो जाने पर।
1984	23	—	23	3 4 5 6	1-1-84 से 15-1-84 तक 16-1-84 से 13-5-84 तक 14-5-84 से 1-8-84 तक 2-8-84 से 31-12-84 तक	(i) 16-1-84 से मा० न्या० श्री एस० सी० मित्तल के सेवानिवृत्त हो जाने पर। (ii) 14-5-84 से मा० न्या० श्री ए० एस० बैंस के सेवानिवृत्त हो जाने पर। (iii) 1-8-84 से मा० न्या० श्री एम०आर० शर्मा के सेवानिवृत्त हो जाने पर।	
985	23	—	23	6 9 10 9	1-1-85 से 21-4-85 तक 22-4-85 से 23-5-85 तक 24-5-85 से 29-7-85 तक 30-7-85 से 31-12-85 तक	(i) 24-5-85 से मा० न्या० श्री जे० एम० टंडन के सेवा निवृत्त हो जाने पर। (ii) भारत सरकार अपर न्यायाधीशों के 3 पद सृजित करने के लिए सहमत हो गई है—देखिए—पत्र सं० 75/11/84-न्या०, तारीख 22-4-85	30-7-85 से मा० न्या० श्री डी० वी० सहगल की नियुक्ति हो जाने पर।
भारत सरकार इस न्यायालय की सदस्य संख्या को 23 स्थायी और 3 अपर न्यायाधीशों के रूप में पुनः नियत करने के लिए सहमत हो गई है।							
देखिए—उनका पत्र सं० 75/11/84, न्या०, तारीख 22-4-85।							

उपाबंध IV

वर्ष	वर्ष के आरंभ पर लंबित मामले	वर्ष के दौरान संस्थित मामले	वर्ष के दौरान निपटाए गए मामले	वर्ष के अंत में लंबित मामले	न्यायाधीशों की कुल सदस्य संख्या (प्रति 1 जनवरी को)	नष्ट मानव दिवस	संभावित निपटना	बकाया मामलों में कमी
1	2	3	4	5	6	7	8	9
1960	2,250	3,241	3,202	2,319	10	157	276	2,043
1961	2,319	3,216	3,553	1,977	13	—	—	—
1962	1,977	3,559	3,833	1,703	13	—	—	—
1963	1,703	3,757	3,290	2,170	12	240	360	1,810
1964	2,170	4,064	4,071	2,166	10	472	1,038	1,128
1965	2,166	3,930	3,814	12,282	10	505.5	916	1,266
1966	12,282	5,507	3,806	3,983	9	663.5	1,524	2,449
1967	3,983	5,202	4,145	5,039	10	589	1,339	3,700
1968	5,039	6,576	6,228	5,387	10	535	1,828	3,559
1969	5,387	7,524	6,641	6,270	10	421.5	1,537	4,753
1970	6,270	7,106	6,272	7,104	11	368.5	1,154	5,950
1971	7,104	7,979	6,491	8,592	8	685	3,052	5,540
1972	8,592	9,076	6,822	10,846	11	290	988	9,858
1973	10,846	10,174	8,175	12,845	12	231	864	11,981
1974	12,845	8,203	8,261	12,787	12	161	610	12,177
1975	12,787	9,528	8,727	13,588	12	178.5	793	12,795
1976	13,588	8,254	7,734	14,109	12	1,805	639	13,470
1977	14,109	14,501	10,395	18,215	11	221.5	1,150	17,065
1978	18,215	20,840	17,095	21,960	12	654	5,119	16,841
1979	21,960	20,754	15,833	26,883	15	379	2,198	24,685
1980	26,883	26,365	16,753	36,293	14	526	3,497	32,796
1981	36,293	31,040	18,690	48,643	15	3,965	2,714	45,929
1982	48,643	43,510	29,112	63,041	13	689	8,477	54,564
1983	63,041	55,902	45,824	73,206	16	322.5	5,074	68,132
1984	73,206	49,011	35,547	86,733	16	87	1,062	85,671
1985	86,733	51,592	51,073	87,247	16	317	5,560	81,681
1986	87,247	12,708	19,115	80,837	11	186	2,791	78,046
30-6-1986								
जोड़				80,837			54,660	26,177

औसतन 67% कमी

उपाबंध V

वर्ष 1981 से वर्ष 1985 तक लंबित मामलों की संख्या, नष्ट मानव दिवस, संभावित निपटान और बकाया मामलों का अतिशेष दर्शित करने वाला विवरण

उच्च न्यायालय का नाम	1981				1982			
	बकाया मामले	नष्ट मानव दिवस	संभावित निपटान	बकाया मामलों का अतिशेष	बकाया मामले	नष्ट मानव दिवस	संभावित निपटान	बकाया मामलों का अतिशेष
इलाहाबाद	1,29,301	2,310	7,150	1,22,151	1,74,936	2,310	7,150	1,67,786
आंध्र प्रदेश	37,565	840	2,600	34,965	57,995	840	2,600	55,395
बम्बई	66,906	840	2,600	64,306	73,362	1,050	3,250	70,112
कलकत्ता	79,281	1,890	5,950	73,331	89,780	1,470	9,550	80,180
दिल्ली	30,987	1,050	3,250	27,737	43,103	1,260	3,900	39,203
गुवाहाटी	8,385	840	2,600	5,785	10,569	400	1,300	9,267
गुजरात	19,473	630	1,950	17,823	24,568	840	2,600	21,968
हिमाचल प्रदेश	5,995	210	650	5,345	7,333	210	650	6,683
जम्मू-कश्मीर	8,826	630	1,950	6,816	12,854	630	950	10,904
कर्नाटक	66,920	420	1,300	65,620	94,593	210	650	93,943
केरल	30,164	210	650	29,514	34,396	420	1,300	33,096
मध्य प्रदेश	25,876	1,260	3,900	21,976	26,196	1,680	5,200	20,996
मद्रास	54,127	840	2,600	51,527	68,717	1,260	3,900	64,847
उड़ीसा	10,877	680	1,950	8,927	13,199	210	650	12,549
पटना	37,454	2,100	6,500	30,954	45,213	2,310	7,150	38,093
पंजाब और हरियाणा	33,915	840	2,600	31,315	33,117	840	2,600	30,549
राजस्थान	22,530	630	1,950	20,580	25,512	1,260	3,900	21,617
सिक्किम	37	—	—	37	62	—	—	62
जोड़	6,68,619	16,170	50,150	6,18,469	8,35,553	17,220	58,300	7,77,252

उपाबंध V—जारी

उच्च न्यायालय का नाम	1983 बकाया मामले	1983 नष्ट मानव दिवस	1983 संभावित निपटान	1983 बकाया मामलों का अतिशेष	1984 बकाया मामले	1984 नष्ट मानव दिवस	1984 संभावित निपटान	1984 बकाया मामलों का अतिशेष	1985 बकाया मामले	1985 नष्ट मानव दिवस	1985 संभावित निपटान	1985 बकाया मामलों का अतिशेष	टिप्पणियां
इलाहाबाद	1,73,536	3,150	9,750	1,63,786	1,97,516	3,990	12,350	1,85,166	2,28,952	1,680	5,200	2,23,752	नष्ट मानव दिवसों और संभावित निपटान के आंकड़े 1981 से 1985 तक प्रति वर्ष 1 जनवरी को रिक्तियों की संख्या के आधार पर निकाले गए हैं।
आंध्र प्रदेश	50,901	840	2,600	48,301	69,691	630	1,950	67,741	81,256	1,260	3,900	77,356	
बम्बई	83,331	1,470	4,550	7,878	93,410	630	1,950	91,460	1,02,942	1,260	3,900	99,042	
कलकत्ता	1,01,192	2,520	7,800	93,392	1,16,821	2,520	1,800	1,09,021	1,36,641	630	1,950	1,34,691	
दिल्ली	46,709	1,260	3,900	42,089	57,889	420	1,300	56,589	68,157	210	0,650	67,501	
गुवाहाटी	12,174	210	650	11,524	13,403	210	650	12,753	—	420	1,300	उपलब्ध नहीं	
गुजरात	27,755	210	650	27,105	32,159	210	650	31,509	36,949	630	1,950	34,999	
हिमाचल प्रदेश	9,041	210	650	8,391	9,053	210	650	8,403	9,059	—	—	9,059	
जम्मू-कश्मीर	17,554	630	1,950	15,604	22,290	840	2,600	19,690	25,801	420	1,300	24,507	
कर्नाटक	1,21,387	210	650	1,20,737	11,65,611	420	1,300	1,15,264	96,764	—	—	96,764	
केरल	49,973	840	2,600	47,373	72,773	1,050	3,250	69,523	1,00,373	840	2,600	97,773	
मध्य प्रदेश	27,402	2,520	7,800	19,602	29,054	2,100	6,500	22,354	34,210	420	1,300	32,910	
मद्रास	86,850	1,050	3,250	83,600	1,01,066	1,260	3,900	97,166	1,23,867	1,050	3,250	1,20,617	
उड़ीसा	14,590	420	1,300	13,290	17,591	210	650	16,941	24,214	210	650	23,56[illegible]	
पटना	49,347	630	1,950	47,397	54,602	420	1,300	53,302	57,048	420	1,300	55,740	
पंजाब और हरियाणा	34,018	420	1,300	32,718	33,285	630	1,950	31,335	33,708	1.260	3,900	29,808	
राजस्थान	29,087	1,260	3,900	25,387	33,469	840	2,600	30,869	36,001	630	1,950	34,051	
सिक्किम	71	—	—	71	71	—	—	71	36	—	—	36	
जोड़	9,35,118	17,850	55,250	8,79,868	10,70,707	16,590	51,350	10,19,357	11,95,984	11,340	35,100	11,62,184	

उपाबन्ध VI

विभिन्न उच्च न्यायालयों से प्राप्त उत्तरों का विवरण

88-M/J(D)192MofLJ&CA—7

उपाबंध

विभिन्न उच्च न्यायालयों से प्राप्त

क्रम संख्या	प्रश्न	आंध्र प्रदेश
I.	लोक सेवा आयोग द्वारा न्यायपालिका के निम्नतम काडर के लिए भर्ती—	
	(i) क्या उसके लिए पर्याप्त आवेदन प्रप्त हुए	(i) जी हां।
	(ii) क्या जोन पर्याप्त रूप से इतना बड़ा था कि उसमें से अच्छे अभ्यर्थी चुने जा सकें और अवांछित अभ्यर्थी नामंजूर किए जा सकें ?	
	(iii) यदि पर्याप्त आवेदन प्राप्त नहीं हुए तो उसके क्या कारण थे ?	(ii) लो० से० आ० के सदस्य न्याय प्रशासन के व्यावहारिक पहलू से अनभिज्ञ हैं, उच्च न्यायालय का सहयोजित सदस्य अंक नहीं दे सकता है। उसके सुझाव अन्य व्यक्तियों को स्वीकार्य नहीं हो सकते हैं। स्थिति संतोषप्रद नहीं है। आपात स्थिति में लिखित परीक्षा टाली जा सकती है।
II.	क्या न्यायपालिका के मध्यस्तर पर सीधी भर्ती के लिए उपबंध था, यदि हां, तो उसका,—	जी हां।
	(i) कोटा	(i) 1/3 सीधी भर्ती द्वारा।
	(ii) अनपात	(ii) ——यथोक्त——
	(iii) भर्ती की अवधि	(iii) जब भी रिक्ति हो जाए।
	(iv) आवेदन की पर्याप्तता	(iv) अच्छी किन्तु, अ०ज०जा० को छोड़कर पहला अ०ज०जा० का न्यायाधीश 1986 में नियुक्त।
	(v) क्या अच्छे अभ्यर्थी उपलब्ध थे, यदि नहीं तो उसके कारण ?	(v) जी हां।
III.	1. क्या अच्छे विधि-व्यवसाय वाले योग्य वकील उच्च न्यायालय में न्यायाधीश का पद स्वीकार करने के लिए इच्छुक होते हैं ?	1. जी हां वे स्वीकार करते हैं।
	2. क्या पुनरीक्षित उपलब्धियां उनको आकर्षित करने के लिए थीं ?	2. केवल सीमांत प्रभाव है। वास्तविक रूप से अच्छे वकीलों को आकृष्ट करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं।
IV.	उच्च न्यायालय में नियुक्ति के लिए सुसंगत विचारण	
	(i) आय	(i) जी हां।
	(ii) विधिज्ञ परिषद् में अवस्थिति	(ii) जी हां।
	(iii) जातियां	(iii) जी नहीं।
	(iv) आरक्षण सिद्धान्त, यदि कोई हो या अन्य विचारण	(iv) जी नहीं। किन्तु चरित्र निष्ठा, सामर्थ्य पर ध्यान दिया जाता है।
V.	1. क्या अनुच्छेद 222 के अधीन स्थानांतरण की शक्ति ने और उच्चतम न्यायालय द्वारा सांकलचंद और गुप्ता के मामले में उसके निर्वचन किया गया है, हतोत्साहित किया है ? यदि हां, तो उदाहरण दें।	1. जी नहीं।
	2. क्या आय-कर निर्धारण आदेश के लिए आग्रह किया गया था ?	2. जी हां।

VI

उत्तरों का विवरण

दिल्ली	गुवाहाटी	गुजरात
	1. लो० से० आ० और उच्च न्यायालय 50 : 50	1. जी हां
(i) उच्च न्यायालय जी हां। 1984 में 37 रिक्तियों के लिए 1,200 आवेदन।	(i) जी हां।	(i) जी हां।
(ii) जी हां।	(ii) लो० से० आ० और उ० न्या० द्वारा चुने गए अभ्यर्थी अच्छे हैं किन्तु उच्च स्तर के नहीं हैं।	(ii) लो० से० आ० अपेक्षित संख्या में अभ्यर्थियों का चयन करने में समर्थ है।
जी हां।	जी हां।	जी हां।
(i) 1/3 सीधी भर्ती द्वारा।	(i) 1/3 सीधी भर्ती द्वारा। 1/4 त्रिपुरा में।	(i) 1/2 सीधी भर्ती द्वारा।
(ii) 2/3 दिल्ली न्यायिक सेवा के सदस्यों द्वारा।	(ii) —	(ii) 50 : 50
(iii) जब भी रिक्ति होती है।	(iii) —	(iii) जब कभी रिक्ति होती है।
(iv) अच्छी।	(iv) अच्छी	(iv) उच्च न्या०, विधिज्ञ परिषद् से सक्षम और उपयुक्त अभ्यर्थी को मनाने में कठिनाई का सामना कर रहा है। 50 : 50 के अनुपात को नहीं बनाए रखा जा रहा है।
(v) उपयुक्तता उच्च न्या० द्वारा आंकी जाती है। कोई कठिनाई नहीं	(v) उच्च कोटि के अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं हैं। सेवा की शर्तें और सुविधाएं आकर्षक नहीं है।	
— —	1. उसकी जानकारी में नहीं है।	जी नहीं। उन्हें पद स्वीकार करने के लिए मनाने में कठिनाई होती है।
	2. कुछ आकर्षण पैदा करेगी।	2. ऐसी साबित होनी चाहिए।
	(i) जी हां। (ii) जी हां। (iii) जी नहीं। (iv) जी नहीं।	(i) जी हां। (ii) जी हां। (iii) जी नहीं। (iv) जी नहीं।
	1. जी नहीं।	1. जी नहीं।
	2. आयकर निर्धारण आदेश नहीं मांगे गए।	2. जी हां।

क्रम संख्या	प्रश्न	आन्ध्र प्रदेश
VI.	1. क्या मामलों की बढ़ती संख्या और बकाया मामलों को निपटाने के लिए न्यायाधीशों की विद्यमान संख्या पर्याप्त है ?	1. 26 से बढ़ाकर 36 की गई। यह पर्याप्त है।
	2. क्या निम्नलिखित के अनुसार तय की गई है ?	2.
	(i) संस्थित मामले	(i) जी हां।
	(ii) जनसंख्या आधार	(ii) --
	(iii) राज्य का क्षेत्रफल	(iii) --
	3. क्या संख्या का पुनरीक्षण किया गया है ? यदि हां तो कब-कब	3. समय-समय पर।
	4. अंतिम पुनरीक्षण कब किया गया था ?	3. 1986
VII.	1. क्या अनुच्छेद 224 के अधीन अपर न्यायाधीश नियुक्त किए जाते हैं ?	1. जी हां।
	2. पुष्टि में व्यपगत समय— क्या किसी को पुष्ट नहीं किया गया ?	2. 6 मास। जी नहीं।
VIII.	रिक्तियों को भरने में भारी विलंब—	
	(i) कारण	(i) न्यायपालिका। ईर्ष्या। सिफारिश किए गए व्यक्ति के विरुद्ध सभी आरोपों की जांच होनी आवश्यक है। इसलिए विलंब होता है।
	(ii) किस प्रक्रम पर विलंब होता है ?	(ii) संघ या राज्य के सरकारी स्तर पर।
	(iii) क्या मुख्य न्यायमूर्ति पूर्व प्रत्याशित रिक्तियों को ध्यान में रखकर सिफारिश करते हैं ?	(iii) जी हां।
	(iv) क्या सिफारिश की फाइल के संचलन का पता लगाया जाता है ?	(iv) लागू नहीं।
	(v) क्या मुख्य न्यायमूर्ति और मुख्य मंत्री के बीच वैयक्तिक मतभेद/विचार-विमर्श होता है ?	(v) जी नहीं।
	(vi) क्या वह सहायक होता है ?	(vi) ---
	(vii) क्या मुख्य मंत्री नामों की सिफारिश करते हैं ?	(vii) जी नहीं।
	(viii) यदि मुख्य न्या०, मुख्य मंत्री, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा अनुमोदित की गई कोई सिफारिश भारत संघ द्वारा नामंजूर कर दी गई है, यदि हां, तो इसका उदाहरण दें	(viii) जी नहीं। तीन नामों पर अभी भी सरकार को निर्णय करना है।
IX.	वर्ष 1980 से आज तक रिक्तियों के भरे जाने में विलंब—	अनुबंध III देखें।
X.	पद्धति को और अधिक लचीला, नम्य और परिणामोन्मुख बनाने के लिए हल।	हाल ही में सरकार ने मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा भेजे गए नामों पर अपने विचार व्यक्त करने के लिए राज्य सरकार के लिए 1 मास की अवधि नियत की है। प्रत्येक स्तर पर समय सीमा नियत की जाने से विलंब में कमी आएगी।

VI—जारी

दिल्ली	गुवाहाटी	गुजरात
1. जी नहीं। मामलों के संस्थित किए जाने में तेजी से वृद्धि।	1. जी नहीं, चार दूरवर्ती शाखाओं की दृष्टि से।	1. सदस्य संख्या बढ़ा दी गई है, पर्याप्त होगी।
2.	2. सभी बातों पर विचार किया गया।	2.
(i) जी हां।		(i) जी हां।
(ii) —		(ii) —
(iii) —		(iii) —
3. कोई नियत अंतराल नहीं	3. कोई नियत अंतराल नहीं।	3. कोई नियत अंतराल नहीं।
4. 1985	4. 1986 स्थायी न्यायाधीशों के दो नए पद सृजित किए गए।	4. 1985
1. जी हां।	1. जी हां।	1. जी हां।
2. इसके पहले 2–3 वर्ष किन्तु अब घटकर 6–9 मास न्यायमूर्ति ओ० एस० वोहरा, न्यायमूर्ति एस० एन० कुमार	2. 2 वर्ष से कम—सभी स्थायी	2. 1–2 वर्ष। एक न्यायाधीश पुष्ट हुए बिना, अधिवर्षिता की आयु को प्राप्त हुआ।
—	(i) गठन की प्रक्रिया में समय लगता है क्योंकि दो राज्य हैं।	(i) —
—	(ii) विभिन्न प्रक्रमों पर।	(ii) सभी स्तरों पर।
—	(iii) जी हां।	(iii) जी हां।
—	(iv) आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।	(iv) —
—	(v) अभिलेखों में कुछ नहीं है।	(v) —
—	(vi) —	(vi) —
—	(vii) अभिलेख में कुछ नहीं है।	(vii) जी नहीं
	(viii) जी नहीं।	(viii) 12 जुलाई, 1985 के पत्र द्वारा जी० डी० भट्ट, एम० बी० पटेल, एल० के० देसाई के नामों की सिफारिश की गई। 19 दिसम्बर, 85 को पी० एम० चौहान के नाम की सिफारिश की गई। पी० एम० चौहान को आग्रह किए जाने पर नियुक्त किया गया। बाद में पटेल भी नियुक्त किए गए।
	—	—
	वर्तमान पद्धति संतुलित है और यदि कृत्यकारियों के बीच परस्पर विश्वास और सौहार्द्र है तो इसे समाधानप्रद रूप में काम करना चाहिए।	—

क्रम संख्या	प्रश्न	जम्मू-कश्मीर
I.	लोक सेवा आयोग द्वारा न्यायपालिका के निम्नतम काडर के लिए भर्ती—	
	(i) क्या उसके लिए पर्याप्त आवेदन प्राप्त हुए ?	(i) जी हां।
	(ii) क्या जोन पर्याप्त रूप से इतना बड़ा था कि उसमें से अच्छे अभ्यर्थी चुने जा सकें और आवांछित अभ्यर्थी नामंजूर किए जा सकें ?	(ii) जी हां।
	(iii) यदि पर्याप्त आवेदन प्राप्त नहीं हुए तो उसके क्या कारण थे ?	(iii) —
II.	क्या न्यायपालिका के मध्यस्तर पर सीधी भर्ती के लिए उपबंध था ? यदि हां, तो उसका—	जी हां।
	(i) कोटा	(i) 1/4 सीधी भर्ती द्वारा।
	(ii) अनुपात	(ii) 75% सीधी प्रोन्नति द्वारा।
	(iii) भर्ती की अवधि	(iii) अच्छी।
	(iv) आवेदन की पर्याप्तता	(iv) उत्तम व्यक्ति कम परिलब्धियों के कारण आकृष्ट नहीं हुए।
	(v) क्या अच्छे अभ्यर्थी उपलब्ध थे ? यदि नहीं तो उसके कारण ?	
III.	1. क्या अच्छे विधि-व्यवसाय वाले योग्य वकील उच्च न्यायालय में न्यायाधीश का पद स्वीकार करने के लिए इच्छुक होते हैं ?	1. जी नहीं।
	2. क्या पुनरीक्षित उपलब्धियां उनको आकर्षित करने के लिए थीं ?	2. उम्मीद तो है।
IV.	उच्च न्यायालय में नियुक्ति के लिए सुसंगत विचारण।	
	(i) आय	(i) जी हां।
	(ii) विधिज्ञ परिषद् में अवस्थिति	(ii) जी हां।
	(iii) जातियां	(iii) कुछ सीमा तक।
	(iv) आरक्षण सिद्धांत, यदि कोई हो, या अन्य विचारण।	(iv) कोई नहीं।
V.	1. क्या अनुच्छेद 222 के अधीन स्थानांतरण की शक्ति ने और उच्चतम न्यायालय द्वारा सांकलचंद और गुप्ता के मामले में उसके निर्वचन किया गया है ? हतोत्साहित किया है ? यदि हां, तो उदाहरण दें।	1. जी नहीं।
	2. क्या आय-कर निर्धारण आदेश के लिए आग्रह किया गया था ?	2. जी नहीं।

VI—जारी

कर्नाटक	केरल	मध्य प्रदेश
उ० न्या० द्वारा और लो० से० आ० द्वारा नहीं।	1. जी हां। सरकार से आग्रह किया गया कि वह इसे उ० न्या० को सौंप दे। सरकार सहमत है। नियमों की प्रतीक्षा की जा रही है।	जी हां।
(i) जी हां, अ० जा० और अ० ज० जा० से पर्याप्त आवेदन नहीं।	(i) पर्याप्त आवेदन।	(i) जी हां।
(ii) जी हां।	(ii) जी हां।	(ii) जी हां।
(iii) —	(iii) —	(iii) —
जी हां।	जी हां।	जी हां।
(i) 1/3 सीधी भर्ती द्वारा।	(i) 1/3 सीधी भर्ती द्वारा।	(i) 20% सीधी भर्ती द्वारा।
(ii) 2 : 1	(ii) 2/3 प्रोन्नति द्वारा।	(ii) —
(iii) कोई विहित अवधि नहीं।	(iii) जब भी रिक्ति होती है।	(iii) जब कभी नए पद सृजित होते हैं।
(iv) सक्षम और अग्रणी वकीलों के आवेदन पर्याप्त नहीं। 12 पदों के लिए केवल 5 आवेदक। कोई भी सक्षम नहीं हैं।	(iv) अच्छी।	(iv) बहुत उत्साहजनक नहीं।
	(v) जी हां। किन्तु अ० जा० और अ० ज० जा० के पर्याप्त आवेदन नहीं हैं।	(v) —
1. किन्तु सिफारिश किए जाने और वस्तुतः नियुक्ति की जाने के बीच असाधारण विलंब मुख्य अड़चन है।	1. जी हां।	1. जी हां।
2. —	2. पर्याप्त आय वाले वकीलों को स्वीकार करने के लिए उत्प्रेरित किया जा सकता है।	2. कुछ लोगों ने पहले मना कर दिया था किन्तु अब वे स्वीकार कर सकते हैं।
(i) जी हां।	(i) बहुत महत्वपूर्ण निर्णायक नहीं।	(i) जी हां।
(ii) जी हां।	(ii) जी हां।	(ii) जी हां।
(iii) जी नहीं।	(iii) अ० जा० और अ० ज० जा० के व्यक्तियों पर जिनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है, विचार किया जाए।	(iii) जी नहीं।
(iv) जी नहीं। किन्तु आरक्षित प्रवर्ग के व्यक्तियों के नामों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाना चाहिए। व्यक्तियों की निष्ठा।	(iv) सक्षमता, निष्ठा, चरित्र, मन में जागरूकता।	(iv) जी नहीं।
1. जी नहीं।	1. जी हां। अच्छे अभ्यर्थियों को भयोपरत करेगा। भावना यह है कि स्थानांतरण मुख्य न्यायमूर्तियों के ही होते हैं। यदि बड़े पैमाने पर स्थानान्तरण किए गए तो अच्छे वकीलों को आकर्षित करना कठिन होगा।	1. कुछ लोगों पर आंशिक प्रभाव पड़ा है।
2. —		

उपाबंध

क्रम सं०	प्रश्न	जम्मू-काश्मीर
VI.	1. क्या मामलों की बढ़ती संख्या और बकाया मामलों को निपटाने के लिए न्यायाधीशों की विद्यमान संख्या पर्याप्त है ?	1. जी हां।
	2. क्या निम्नलिखित के अनुसार तय की गई है ?	2.
	(i) संस्थित मामले (ii) जनसंख्या आधार (iii) राज्य का क्षेत्रफल	(i) (ii) (iii) इस निर्णय पर किसी एक बात का प्रभाव नहीं पड़ता।
	3. क्या संख्या का पुनरीक्षण किया गया है ? यदि हां तो कब-कब ?	3. समय-समय पर पुनर्विलोकन।
	4. अंतिम पुनरीक्षण कब किया गया था ?	4. 1988, सदस्य-संख्या 7 से बढ़ाकर 11 की गई।
VII.	1. क्या अनुच्छेद 224 के अधीन अपर न्यायाधीश नियुक्त किए जाते हैं ?	जी हां। एक वर्ष से अधिक नहीं।
	2. पुष्टि में व्यपगत समय—क्या किसी को पुष्ट नहीं किया गया ?	
VIII.	रिक्तियों को भरने में भारी विलंब —है	
	(i) कारण।	(i) (ii) ऐसा कोई अनुभव नहीं।
	(ii) किस प्रक्रम पर विलंब होता है ?	
	(iii) क्या मुख्य न्यायमूर्ति पूर्व प्रत्याशित रिक्तियों को ध्यान में रखकर सिफारिश करते हैं ?	(iii) दो व्यक्तियों की सिफारिश की गई जिन्हें समय पर नियुक्त किया गया।
	(iv) क्या सिफारिश की फाइल के संचलन का पता लगाया जाता है ?	(iv) —
	(v) क्या मुख्य न्यायमूर्ति और मुख्यमंत्री के बीच वैयक्तिक मतभेद/विचार-विमर्श होता है ?	(v) प्रस्तावों पर अनौपचारिक रूप से विचार-विमर्श किया गया। कोई मतभेद नहीं।
	(vi) क्या वह सहायक होता है ?	(vi) जी हां, अभी तक तो है।
	(vii) क्या मुख्यमंत्री नामों की सिफारिश करते हैं ?	(vii) जी नहीं।
	(viii) यदि मुख्य न्या०, मुख्यमंत्री, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा अनुमोदित की गई कोई सिफारिश भारत संघ द्वारा नामंजूर कर दी गई है ? यदि हां, तो इसका उदाहरण दें।	(viii) जी नहीं।
IX.	वर्ष 1980 से आज तक रिक्तियों के भरे जाने में विलंब—	—
X.	पद्धति को और अधिक लचीला, नम्य और परिणामोन्मुख बनाने के लिए हल।	राज्य के मुख्य न्यायमूर्ति की सिफारिश को, जब भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा अनुमोदित कर दी जाए तो उसे सदैव स्वीकार कर लिया जाना चाहिए।

VI—जारी

कर्नाटक	केरल	मध्य प्रदेश
1. जी हां, यदि नियुक्तियां समय पर की जाएं।	1. जी नहीं। सरकार वृद्धि के लिए सहमत हो गई है।	1. वृद्धि आवश्यक है।
2. (i) — (ii) — (iii) —	2. (i) जी हां। (ii) जी नहीं। (iii) जी नहीं।	2. — (i) — (ii) — (iii) —
3. —	3. जब मुख्य न्या० प्रस्ताव करते हैं।	3. —
4. 1982	4. लगभग 6 मास पूर्व।	4. 15 सितम्बर, 1984 सदस्य संख्या 29 से बढ़ा कर 30 कर दी गई।
—	1. जी हां।	1. जी नहीं
—	2. 5 मास—5 वर्ष सभी स्थायी।	2. रिक्ति होने पर निर्भर करता है 1962 में सी० बी० केकरे और के० ए० रज्जाक पुष्ट नहीं किए गए। बाद में रज्जाक को स्थायी न्यायाधीश नियुक्त किया गया।
—	(i) विलंब राजधानी में ही होता है। कारण, केवल भारत सरकार स्पष्ट कर सकती है। (ii) दिल्ली। (iii) जी हां। (iv) 4-6 सप्ताह के भीतर। मु० न्या० के प्रस्ताव पर मु० मंत्री, और राज्यपाल कार्रवाई करके भारत सरकार को भेज देते हैं। (v) जी हां। नामों को अंतिम रूप देने से पूर्व। (vi) जी हां (vii) जी नहीं (viii) जी नहीं	(i) विभिन्न स्तरों पर परामर्श के कारण। (ii) — (iii) अभी तक कोई सिफारिश नहीं की गई। (iv) — (v) कोई जानकारी नहीं। (vi) — (vii) अभी तक कोई नाम प्राप्त नहीं हुए। (viii) लागू नहीं होता।
—	—	—
नियुक्तियां ठीक समय पर की जानी चाहिएं।	मुख्य मंत्री/ राज्यपाल भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या केन्द्र के किसी भी स्तर पर असहमति के कारणों सहित मुख्य न्यायमूर्ति को संसूचित किया जाना चाहिए ताकि शंकाएं दूर की जा सकें। यदि सिफारिश स्वीकार्य न हो तो उसके कारण भी संसूचित किए जाने चाहिए। इससे अभ्यर्थी के प्रति सद्भावना सुनिश्चित होगी। प्रधान मंत्री, विधि और गृह मंत्री की एक उच्चस्तरीय समिति की बैठक हो जिसमें उचित समय के भीतर विनिश्चय किए जाएं।	रिक्तियों को शीघ्रता से भरे जाने के महत्व को सभी स्तरों पर महसूस किया जाना चाहिए। सभी स्तरों पर केवल योग्यता पर ही जोर दिया जाना चाहिए।

क्रम संख्या	प्रश्न	उड़ीसा
I.	लोक सेवा आयोग द्वारा न्यायपालिका के निम्नतम काडर के लिए भर्ती—	जी हां ।
	(i) क्या उसके लिए पर्याप्त आवेदन प्राप्त हुए ?	(i) जी हां ।
	(ii) क्या जोन पर्याप्त रूप से इतना बड़ा था कि उसमें से अच्छे अभ्यर्थी चुने जा सकें और अवांछित अभ्यर्थी नामंजूर किए जा सकें ?	(ii) जी हां ।
	(iii) यदि पर्याप्त आवेदन प्राप्त नहीं हुए तो उसके क्या कारण थे ?	(iii) —
II.	क्या न्यायपालिका के मध्यस्तर पर सीधी भर्ती के लिए उपबंध था ? यदि हां, तो उसका—	जी हां ।
	(i) कोटा	(i) कोई कोटा नहीं ।
	(ii) अनुपात	(ii) प्रायः स्थायी काडर का 25 प्रतिशत ।
	(iii) भर्ती की अवधि	(iii) लगभग 1 वर्ष लग जाता है।
	(iv) आवेदन की पर्याप्तता	(iv) अच्छी ।
	(v) क्या अच्छे अभ्यर्थी उपलब्ध थे, यदि नहीं तो उसके कारण ?	(v) प्रत्याशित क्वालिटी के अभ्यर्थी नहीं मिल रहे हैं क्योंकि परिलब्धियों और वकील की आय में अंतर बढ़ गया है ।
III.	1. क्या अच्छे विधि-व्यवसाय वाले योग्य वकील उच्च न्यायालय में न्यायाधीश का पद स्वीकार करने के लिए इच्छुक होते हैं ?	1. जी हां ।
	2. क्या पुनरीक्षित उपलब्धियां उनको आकर्षित करने के लिए थीं ?	2. जी हां।
IV.	उच्च न्यायालय में नियुक्ति के लिए सुसंगत विचारण—	
	(i) आय	(i) जी हां।
	(ii) विधिज्ञ परिषद् में अवस्थिति	(ii) जी हां।
	(iii) जातियां	(iii) जी हां।
	(iv) आरक्षण सिद्धांत, यदि कोई हो, या अन्य विचारण	(iv) जी नहीं। किन्तु बिहार में (जहां वह मुख्य न्यायमूर्ति थे) कुछ पिछड़े वर्ग के उत्तरदायी क्षमता वाले अभ्यर्थियों को चुना गया था।
V.	1. क्या अनुच्छेद 222 के अधीन स्थानांतरण की शक्ति ने और उच्चतम न्यायालय द्वारा सांकलचंद और गुप्ता के मामले में उसके निर्वचन किया गया है, हतोत्साहित किया है ? यदि हां, तो उदाहरण दें।	1. जी हां। पटना उ० न्या० के गोपनीय अभिलेखों से ऐसे उदाहरण प्राप्त किए जा सकते हैं।
	2. क्या आय-कर निर्धारण आदेश के लिए आग्रह किया गया था ?	

VI.—जारी

पंजाब और हरियाणा	राजस्थान	सिक्किम
जी हां ।	1. जी हां	1. जी नहीं, भर्ती चयन समिति की सिफारिश पर की जाती है ।
(i) जी हां ।	(i) जी हां ।	(i) अभी तक विज्ञापित नहीं ।
(ii) जी हां ।	(ii) —	(ii) 1975 के पूर्व चोग्याल के शासन में वकीलों को विधि व्यवसाय अनुज्ञात नहीं था । ऐसे वकील बहुत नहीं हैं जो अर्ह हों ।
(iii) —	(iii) —	
जी हां ।	जी हां ।	जी हां
(i) सीधी भर्ती द्वारा 1/3 ।	(i) 1/3 सीधी भर्ती द्वारा ।	(i) 1/3
(ii) पी० सी० एस० और एच० सी० एस० से 2/3 प्रोन्नति	(ii) —	(ii) 1: 3
(iii) —	(iii) जब कभी रिक्ति होती है ।	(iii) अभी तक कोई सीधी भर्ती नहीं की गई है ।
(iv) बहुत अच्छी नहीं ।	(iv) अच्छी ।	(iv) अच्छी नहीं है ।
(v) सीधे भर्ती होने वाले, अस्थायी पदों पर स्थानापन्न रूप से कार्यरत सभी प्रोन्नत व्यक्तियों से नीचे हैं । जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने में लंबा समय लगता है जिससे उ० न्या० में नियुक्त होने के अवसर कम होते जाते हैं	(v) कोटा ठीक है यदि उपयुक्त अभ्यर्थी उपलब्ध हों ।	
1. अच्छी आय वाले बहुत कम वकील स्वीकार नहीं करते हैं। किन्तु सक्षम वकील उस दशा में स्वीकार करेंगे यदि प्रस्थापना उचित प्रक्रम पर की जाए और उनके मामले में आरंभ और अंतिम विनिश्चय के बीच समय व्यपगत न हो (इलाहाबाद विधिज्ञ परिषद् और न्यायालय का अनुभव)	1. जी हां ।	1. अच्छे विधि व्यवसाय वाला कोई दक्ष वकील शायद ही मिले ।
2. राजी करने में सहयोग दिया जाना चाहिए ।	2. —	2. —
(i) जी हां, किन्तु मात्र आय ही एक अच्छा मार्गदर्शक सिद्धांत नहीं है	(i) —	—
(ii) जी हां	(ii) —	—
(iii) जी नहीं	(iii) —	—
(iv) जी नहीं । केवल सही सर्वांगीण योग्यता पर ।	(iv) —	—
1. जी नहीं ।	1. यह सुनिश्चित करने के लिए कि व्यक्ति खरा है, उसे सुदृढ़ नैतिकता वाला संभ्रांत नागरिक होना चाहिए ।	1. —
2. अभ्यर्थियों से गत 3–4 वर्ष की विवरणियां देने के लिए कहा जाता है किन्तु आग्रह नहीं किया जाता है ।	2. —	2. इस उच्च न्यायालय को लागू नहीं होता । ये कार्य हतोत्साहिक रूप में हैं क्योंकि सरकार अपनी शक्ति का दुरुपयोग करती है ।

क्रम संख्या	प्रश्न	उड़ीसा
VI.	1. क्या मामलों की बढ़ती संख्या और बकाया मामलों को निपटाने के लिए न्यायाधीशों की विद्यमान संख्या पर्याप्त है ?	1. जी नहीं ।
	2. क्या निम्नलिखित के अनुसार तय की गई है ?	2.
	(i) संस्थित मामले ।	(i) जी हां ।
	(ii) जनसंख्या आधार ।	(ii) जी नहीं ।
	(iii) राज्य का क्षेत्रफल ।	(iii) जी हां ।
	3. क्या संख्या का पुनरीक्षण किया गया है ? यदि हां, तो कब-कब ?	3. गत 4 वर्षों से नहीं की गई है । पटना में यह कार्य जल्दी-जल्दी किया गया था ।
	4. अंतिम पुनरीक्षण कब किया गया था ?	4. 1986
VII.	1. क्या अनुच्छेद 244 के अधीन अपर न्यायाधीश नियुक्त किए जाते हैं ?	1. जी हां ।
	2. पुष्टि में व्यपगत समय—क्या किसी को पुष्ट नहीं किया गया ?	2. एक वर्ष से कम ।
VIII.	रिक्तियों को भरने में भारी विलंब —	
	(i) कारण	(i) राजनीतिक प्रभाव । सभी प्रक्रमों पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता ।
	(ii) किस प्रक्रम पर विलंब होता है ?	(ii) भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को छोड़, सभी प्रक्रमों पर अधिकतर विलंब मुख्यमंत्री के प्रक्रम पर होता है ।
	(iii) क्या मुख्य न्यायमूर्ति पूर्व प्रत्याशित रिक्तियों को ध्यान में रखकर सिफारिश करते हैं ?	(iii) ऐसी स्थिति से निपटने के लिए ऐसा कोई अवसर नहीं आया ।
	(iv) क्या सिफारिश की फाइल के संचलन का पता लगाया जाता है ?	(iv) —
	(v) क्या मुख्य न्यायमूर्ति और मुख्यमंत्री के बीच वैयक्तिक मतभेद/विचार-विमर्श होता है ?	(v) जी हां ।
	(vi) क्या वह सहायक होता है ?	(vi) जी हां ।
	(vii) क्या मुख्यमंत्री नामों की सिफारिश करते हैं ?	(vii) जी हां ।
	(viii) यदि मुख्य न्या०, मुख्यमंत्री, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा अनुमोदित की गई कोई सिफारिश भारत संघ द्वारा नामंजूर कर दी गई है ? यदि हां तो इसका उदाहरण दें ।	(viii) जी नहीं ।
IX.	वर्ष 1980 से आज तक रिक्तियों के भरे जाने में विलंब—	—
X.	पद्धति को और अधिक लचीला, नम्य और परिणामोन्मुख बनाने के लिए हल ।	त्रुटि, पद्धति में नहीं है बल्कि उन व्यक्तियों, संस्थाओं में है जो इस विषय में कार्रवाई करती है । यदि इस मामले में कार्रवाई करने के लिए अनिवार्य समय-सीमा नियत की जाती है और असफलता के लिए व्यतिक्रमी अभिकरण को किसी प्रकार से उत्तरदायी ठहराया जाए तो स्थिति सुधर सकती है ।

VI—जारी

पंजाब और हरियाणा	राजस्थान	सिक्किम
1. जी हां, यदि रिक्तियां समय पर भरी जाएं	जी हां, यदि रिक्तियां समय पर भरी जाएं।	इस न्यायालय में तो प्रश्न ही नहीं उठता। मुख्य न्यायमूर्ति सहित केवल दो न्यायाधीश। एक पद रिक्त केवल कुछ मामले–60 प्रति वर्ष फाइल किए जाते हैं। 60 दिन से अधिक का कोई कार्य नहीं है।
2.	2.	
(i) जी हां।	—	—
(ii) —	—	—
(iii) —	—	—
3. आवश्यकता के आधार पर।	—	—
4. 1985 में।	—	—
1. जी हां।	1. जी हां।	
2. जब स्थायी पद पर रिक्तियां होती हैं।	2. एफ० डी० गट्टानी, एन० एन० डीडवानिया और एम०बी० शर्मा स्थायी नहीं किए गए। एम० बी० शर्मा को दो वर्ष पश्चात् सीधे स्थायी न्यायाधीश नियुक्त किया गया।	—
(i) —	(i) रिक्तियों को भरने के लिए सिफारिशों का आरंभ मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा ही किया जाता है।	—
(ii) —		—
(iii) जी हां।		—
(iv) —		—
(v) जी हां।		(v) (vi) (vii) मुख्य मंत्री ने अपना सुझाव दिया एक ऐसे स्थानीय अभ्यर्थी की नियुक्ति पर इस बात के होते हुए भी जोर दिया कि वह दक्ष और उपयुक्त नहीं था।
(vi) जी हां।		
(vii) जी हां।		
(viii) —		
—	—	—
	सभी सांविधानिक प्राधिकारियों द्वारा शीघ्रता से विचार किया जाना ही ऐसी बड़ी बात है जिससे विलंब कम किया जा सकता है।	—

उपाबन्ध

क्रम सं०	प्रश्न	कलकत्ता
I.	लोक सेवा आयोग द्वारा न्यायपालिका के निम्नतम काडर के लिए भर्ती—	1. जी हां। 50% पश्चिमी बंगाल सेवा (न्यायिक) द्वारा और 50% विधिज्ञ परिषद् से।
	(i) क्या उसके लिए पर्याप्त आवेदन प्राप्त हुए ?	—
	(ii) क्या जोन पर्याप्त रूप से इतना बड़ा था कि उसमें से अच्छे अभ्यर्थी चुने जा सकें और आवांछित अभ्यर्थी नामंजूर किए जा सकें ?	—
	(iii) यदि पर्याप्त आवेदन प्राप्त नहीं हुए तो उसके क्या कारण थे ?	—
II.	क्या न्यायपालिका के मध्यस्तर पर सीधी भर्ती के लिए उपबंध था, यदि हां, तो उसका—	1. जी नहीं। सभी भर्तियां पश्चिमी बंगाल सिविल सेवा (न्यायिक) द्वारा की जाती हैं।
	(i) कोटा।	—
	(ii) अनुपात।	—
	(iii) भर्ती की अवधि	—
	(iv) आवेदन की पर्याप्तता	—
	(v) क्या अच्छे अभ्यर्थी उपलब्ध थे, यदि नहीं तो उसके कारण।	—
III.	1. क्या अच्छे विधि-व्यवसाय वाले योग्य वकील उच्च न्यायालय में न्यायाधीश का पद स्वीकार करने के लिए इच्छुक होते हैं ?	1. कुछ लोग स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं हैं।
	2. क्या पुनरीक्षित उपलब्धियां उनको आकर्षित करने के लिए थीं ?	2. परिलब्धियों के पुनरीक्षण से संबंधित सभी उपबंध प्रवृत्त नहीं हैं। संविधान की दूसरी अनुसूची के भाग ण का संशोधन, अपेक्षित राज्य विधान सभाओं के अनुसमर्थन की प्रतीक्षा में है।

VI—जारी

इलाहाबाद	हिमाचल प्रदेश	मुम्बई
1. जी हां।	1. जी हां	1. जी हां ।
(i) जी हां।	(i) जी हां	(i) जी हां ।
(ii) चुने हुए व्यक्तियों की योग्यता उचित स्तर की नहीं है। विधिज्ञ परिषद् के सामान्य स्तर, विधिज्ञ शिक्षा के निम्न स्तर का भी इसमें योगदान है।	(ii) जी हां	(ii) अधिकांश अभ्यर्थी न्यूनतम प्रत्याशाओं को भी पूरा नहीं करते। 4% अभ्यर्थी 60% से अधिक अंक प्राप्त करते हैं। अच्छे अभ्यर्थियों को चुनने के लिए ऐसी स्थिति है। कुछ अभ्यर्थी तो परिवीक्षाधीन अवधि भी समाधानप्रद रूप में पूरी नहीं कर सकते।
(iii) —	(iii) —	(iii) सेवा की शर्तें अच्छी नहीं हैं। आवास मुख्य समस्या है। प्रोन्नति के अवसर कम हैं। विधिज्ञ परिषद् में आय बहुत अधिक है।
1. जी हां	1. जी हां।	1. जी हां ।
(i) 15% सीधी भर्ती द्वारा।	(i) 1/3 सीधी भर्ती द्वारा।	(i) कोई कोटा नहीं।
(ii) —	(ii) 2/3 प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों के लिए।	(ii) सामान्यतः 50 : 50 का अनुपात रखा जाता है। नगर सिविल न्यायालयों में 2/3 न्या० विधिज्ञ परिषद् से लिए जाते हैं। लघु न्यायालयों में 50% विधिज्ञ परिषद् से लिए जाते हैं।
(iii) जब कभी रिक्ति होती है।	(iii) 1/3 सीधे भर्ती किए गए व्यक्तियों के लिए।	(iii) कोई नियत नहीं। सामान्यतः दो-तीन वर्ष पश्चात्।
(iv) अच्छी।	—	(iv) अभी तक, अभ्यर्थियों की योग्यता आशानुकूल नहीं रही। कारण वही है जो ऊपर दर्शित हैं।
(v) कोई समस्या नहीं।	—	—
1. जी हां	1. जी हां।	1. जी नहीं। वकीलों की आय तेजी से बढ़ी है किन्तु न्यायाधीशों की परिलब्धियां जहां थीं वहीं हैं।
2. परिलब्धियों में वृद्धि के पश्चात् सक्षम व्यक्तियों को आकृष्ट करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।	2. सुधार हो सकता है।	2. कुछ अच्छे वकीलों को राजी किया जा सकता है किन्तु वकीलों के अर्जन और न्यायाधीशों के वेतन के बीच पर्याप्त अंतर है कुछ सीमा तक प्रास्थिति, पेंशन आदि से प्रतिपूर्ति की जा सकती है।

क्रम संख्या	प्रश्न	कलकत्ता
IV.	उच्च न्यायालय में नियुक्ति के लिए सुसंगत विचारण	
	(i) आय	(i) जी हां किन्तु निर्णायक नहीं ।
	(ii) विधिज्ञ परिषद् में अवस्थिति	(ii) जी हां ।
	(iii) जातियां	(iii) जी नहीं ।
	(iv) आरक्षण सिद्धांत, यदि कोई हो, या अन्य विचारण,	(iv) जी नहीं ।
V.	1. क्या अनुच्छेद 222 के अधीन स्थानांतरण की शक्ति ने और उच्चतम न्यायालय द्वारा सांकलचंद और गुप्ता के मामले में उसके निर्वचन किया गया है, हतोत्साहित किया है ? यदि हां, तो उदाहरण दें ।	—
	2. क्या आय-कर निर्धारण आदेश के लिए आग्रह किया गया था ?	
VI.	1. क्या मामलों की बढ़ती संख्या और बकाया मामलों को निपटाने के लिए न्यायाधीशों की विद्यमान संख्या पर्याप्त है ?	—
	2. क्या निम्नलिखित के अनुसार तय की गई है ?	
	(i) संस्थित मामले ।	
	(ii) जनसंख्या आधार ।	
	(iii) राज्य का क्षेत्रफल ।	
	3. क्या संख्या का पुनरीक्षण किया गया है ? यदि हां तो कब-कब ?	—
	4. अंतिम पुनरीक्षण कब किया गया था ?	—

VI—जारी

इलाहाबाद	हिमाचल प्रदेश	मुम्बई
		प्रमुख विचारण योग्यता और उपयुक्तता है।
(i) जी हां ।	(i) जी हां ।	(i) जी हां, किन्तु मात्र कोई विचारण नहीं है ।
(ii) जी हां ।	(ii) —	(ii) जी हां । यदि सीमित अवस्थिति वाले व्यक्ति को न्यायाधीश बनाया जाता है तो उच्चतर अवस्थिति वाले अधिवक्ता को न्यायाधीश पद स्वीकार करने के लिए राजी करना कठिन होगा ।
(iii) असंगत नहीं। एक ही जातियों के व्यक्तियों की नियुक्तियों से बचने के लिए ही विचार किया गया ।	(iii) —	(iii) लागू नहीं होता किन्तु अल्प-संख्यक समुदाय से अच्छा अभ्यर्थी सुनिश्चित करने के लिए प्रयास किया जाता है और उन्हें अधिमान दिया जाता है ।
(iv) —	(iv) महिलाओं, अ० जा० और अ०ज०जा० तथा पिछड़े वर्ग के व्यक्तियों (यदि उपलब्ध हों) का प्रतिनिधित्व ही मुख्य मानदंड होना चाहिए।	
कोई हतोत्साहत्मक प्रभाव नहीं है ।]	[जी नहीं । क्योंकि राज्यों के बाहर से 1/3 सदस्य होने की नीति कार्यान्वित नहीं की गई ।	जी हां स्थानांतरण पारिवारिक जीवन में विघ्न डालते हैं।
1. जी नहीं]	1. जी हां ।	1. अत्यंत अपर्याप्त, बढ़ा कर मंजूर की गई 60 न्यायाधीशों की सदस्य-संख्या भी अपर्याप्त होगी । 60 न्यायाधीशों को निवास स्थान देना भी कठिन होगा ·
(i) जी हां]	(i) जी हां ।	(i) जी हां।
(ii) —	(ii) —	(ii) कुछ कहना संभव नहीं है ।
(iii) —	(iii) —	
—	—	—
1986	1982, उ० न्या० ने अपनी पूर्ण सदस्य-संख्या सहित, कभी कार्य नहीं किया ।	1986

क्रम सं०	प्रश्न	कलकत्ता
VII.	1. क्या अनुच्छेद 244 के अधीन अपर न्यायाधीश नियुक्त किए जाते हैं ?	—
	2. पुष्टि में व्यपगत समय—क्या किसी को पुष्ट नहीं किया गया ?	—
VIII.	रिक्तियों को भरने में भारी विलंब :—	—
	(i) कारण	—
	(ii) किस प्रक्रम पर विलंब होता है ?	—
	(iii) क्या मुख्य न्यायमूर्ति पूर्व प्रत्याशित रिक्तियों को ध्यान में रखकर सिफारिश करते हैं ?	—
	(iv) क्या सिफारिश की फाइल के संचलन का पता लगाया जाता है ?	—
	(v) क्या मुख्य न्यायमूर्ति और मुख्यमंत्री के बीच वैयक्तिक मतभेद/विचार-विमर्श होता है ?	—
	(vi) क्या वह सहायक होता है ?	—
	(vii) क्या मुख्य मंत्री नामों की सिफारिश करते हैं ?	—
	(viii) यदि मुख्य न्या०, मुख्य मंत्री, भारत के मुख्य न्यायामूर्ति द्वारा अनुमोदित की गई कोई सिफारिश भारत संघ द्वारा नामंजूर कर दी गई है, यदि हां तो इसका उदाहरण दें ।	—
IX.	वर्ष 1980 से आज तक रिक्तियों के भरे जाने में विलंब ।	—
X.	पद्धति को और अधिक लचीला, नम्य और परिणामोन्मुख बनाने के लिए हल।	—

VI—जारी

इलाहाबाद	हिमाचल प्रदेश	मुम्बई
—	1. जी हां	1. जी हां । एक बार तदर्थ न्यायाधीश नियुक्त किए गए थे ।
	2. लगभग 1 वर्ष, सभी स्थायी किए गए	2. जब कभी रिक्ति होती है। यू० आर० पालित और आर० एस० पाध्ये पुष्ट नहीं किए गए । नायडू जे० अपनी बारी आने पर पुष्ट नहीं किए और उन्होंने पद त्याग दिया । पी० आर० भट्ट, राजू भोंसले, एच० एन० मोदी और पी० जी० पलशीकास को कोई स्थायी रिक्ति न होने के कारण पुष्ट नहीं किया गया । बी० जे० पारे को उनके ही अनुरोध पर पुष्ट नहीं किया ।
विलंब के कारण सुविख्यात हैं । यहां अधिकथित किए जाने की आवश्यकता नहीं है ।	—	(i), (ii), (iii) समय पर सिफारिशें भेजना संभव नहीं है क्योंकि रिक्ति अप्रत्याशित हो सकती है और पूर्ववृत्त के सत्यापन आदि में समय लग सकता है ।
	—	(iv), (v), जी हां, विचार-विमर्श उपयोगी है ।
	—	(vi), (vii), (viii) जी हां । किन्तु कोई दबाव नहीं ।
—	—	—
—	—	—
—	—	—
—	—	—
—	—	—
—	—	—
—	—	—
—	न्यायाधीशों की संख्या बढ़ा देने से ही समस्या हल नहीं होगी । ऐसे व्यक्ति नियुक्त किए जाएं जो कर्तव्यनिष्ठ, न्यायपरायण और सर्वोत्कृष्ट हों ।	वर्तमान पद्धति पर्याप्त है यदि ऐसी परम्परा बनाई जाए कि मुख्य मंत्री, मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा सुझाए गए नाम स्वीकार करें और किसी कठिनाई की दशा में तुरन्त चर्चा हो जाए । दोनों ओर से आशंकाओं का निवारण हो केन्द्रीय स्तर पर भी सिफारिश की संवीक्षा कई स्तरों पर करने की बजाय एक ही स्तर पर की जानी चाहिए ।

क्रम सं०	प्रश्न	पटना
I.	लोक सेवा आयोग द्वारा न्यायपालिका के निम्नतम काडर के लिए भर्ती —	जी हां ।
	(i) क्या उसके लिए पर्याप्त आवेदन प्राप्त हुए ।	(i) जी हां ।
	(ii) क्या जोन पर्याप्त रूप से इतना बड़ा था कि उसमें से अच्छे अभ्यर्थी चुने जा सकें और अवांछित अभ्यर्थी नामंजूर किए जा सकें ?	(ii) शिक्षा का स्तर गिरने से आदर्श अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं होते । अच्छी प्रतिभाओं को आकृष्ट करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर स्रोतों का पता लगाना होगा और अखिल भारतीय विधि सेवा सृजित करनी होगी । क्षेत्र तो इतना बड़ा है किन्तु क्वालिटी उपलब्ध नहीं है ।
	(iii) यदि पर्याप्त आवेदन प्राप्त नहीं हुए तो उसके क्या कारण थे ?	—
II.	क्या न्यायपालिका के मध्यस्तर पर सीधी भर्ती के लिए उपबंध था ? यदि हां, तो उसका,—	जी हां ।
	(i) कोटा ।	(i) 1/3 सीधी भर्ती द्वारा, किन्तु गत 8 वर्षों से कोई सीधी भर्ती नहीं हुई । नियमों पर सरकार से विवाद है । सरकार अनुच्छेद 224 के प्रतिकूल, न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए से ऐसा निकाय चाहती है जो उच्च न्यायालय से भिन्न हो ।
	(ii) अनुपात ।	(ii) —
	(iii) भर्ती की अवधि ।	(iii) जब भी रिक्तियां होती हैं ।
	(iv) आवेदन की पर्याप्तता ।	
	(v) क्या अच्छे अभ्यर्थी उपलब्ध थे, यदि नहीं तो उसके कारण ?	(iv) और (v) उपर्युक्त (i) की दृष्टि से उत्तर संभव नहीं है । परिमाणात्मक कठिनाई तो नहीं है किन्तु गुणात्मक क्वालिटी तो होनी चाहिए ।
III.	1. क्या अच्छे विधि-व्यवसाय वाले योग्य वकील उच्च न्यायालय में न्यायाधीश का पद स्वीकार करने के लिए इच्छुक होते हैं ?	1. जी हां ।
	2. क्या पुनरीक्षित उपलब्धियां उनको आकर्षित करने के लिए थीं ?	2. जी हां ।
IV.	उच्च न्यायालय में नियुक्ति के लिए सुसंगत विचारण—	
	(i) आय ।	(i) कार्य का वस्तुपरक ज्ञान और वकील की प्रास्थिति ।
	(ii) विधिज्ञ परिषद् में अवस्थिति ।	(ii) विधि व्यवसाय में उच्च अवस्थिति असंगत है । युवा व्यक्तियों को चुना जाना चाहिए जिनका कार्यकाल दीर्घ और सार्थक होगा ।
	(iii) जातियां	(iii) जी नहीं ।
	(iv) आरक्षण सिद्धांत, यदि कोई हो, या अन्य विचारण	(iv) जी नहीं अल्पसंख्यकों, महिलाओं और पिछड़े वर्गों के संबंध में समानता लाने का प्रयास किया जाना चाहिए ।
V.	1. क्या अनुच्छेद 222 के अधीन स्थानांतरण की शक्ति ने और उच्चतम न्यायालय द्वारा सांकलचंद और गुप्ता के मामले में उसके निर्वचन किया गया है, हतोत्साहित किया है ? यदि हां, तो उदाहरण दें ।	जी नहीं । स्थानांतरित न्यायाधीश को वर्ष में दो बार वायुयान से अपने गृह नगर आने जाने तक का स्थानांतरण भत्ता देकर उसकी प्रतिपूर्ति की जाएगी । कुछ अधिवक्ता बाहर नियुक्त किए जाने के लिए उत्सुक हैं क्योंकि उससे बाद में वे अपने गृह नगर में विधि-व्यवसाय कर सकते हैं ।
	2. क्या आय-कर निर्धारण आदेश के लिए आग्रह किया गया था ?	

VI—जारी

मद्रास

(i) जी हां

(ii) मजिस्ट्रियल सेवा; नए नियम, 1973 से। 1973 के पश्चात् लो० से० आ० ने कोई चयन नहीं किया। मामला उ० न्या० में लंबित है। न्यायिक सेवा : 1975 से 1985 तक कोई नियुक्तियां नहीं की गई। 1985 में 60 पदों के लिए 1400 आवेदक थे। 1986 में 128 पदों के लिए 1500 आवेदक थे।

(iii) —

जी हां।

(i) 10 पद सीधी भर्ती द्वारा भरे जाने हैं। इस समय 6 रिक्तियों के लिए 388 आवेदक हैं। ग्रेड I को ग्रेड II से प्रोन्नति द्वारा भरा जाता है।

(ii) —

(iii) —

(iv) —

(v) —

1. जी नहीं।

2. आवश्यक नहीं।

(i) जी हां।

(ii) जी हां।

(iii) जी नहीं।

(iv) जी नहीं। किन्तु यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि अल्प सुविधाप्राप्त वर्ग के अभ्यर्थियों को उच्च न्यायालय में प्रतिनिधित्व दिया जाए।

जी नहीं। जहां तक इस उच्च न्यायालय का संबंध है तीन पूर्ववर्ती वर्षों के निर्धारण आदेश मांगे गए थे।

—

क्रम संख्या	प्रश्न	पटना
VI.	1. क्या मामलों की बढ़ती संख्या और बकाया मामलों को निपटाने के लिए न्यायाधीशों की विद्यमान संख्या पर्याप्त है ?	1. जी हां। हाल ही में बढ़ाई गई न्यायाधीशों की संख्या आने वाले मामलों को निपटाने के लिए पर्याप्त है किन्तु बकाया मामलों को कम करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी किन्तु न्यायाधीशों के मामलों के निपटाने की दरें भिन्न-भिन्न होती हैं। कुछ न्यायाधीश समस्या के हल के लिए परिश्रम नहीं करते ।
	2. क्या निम्नलिखित के अनुसार तय की गई हैं ?	2. जी हां।
	(i) संस्थित मामले।	
	(ii) जनसंख्या आधार ।	
	(iii) राज्य का क्षेत्रफल।	
	3. क्या संख्या का पुनरीक्षण किया गया है ? यदि हां तो कब-कब ?	3. कोई नियत अंतराल नहीं।
	4. अंतिम पुनरीक्षण कब किया गया था ?	4. 1984
VII.	1. क्या अनुच्छेद 224 के अधीन अपर न्यायाधीश नियुक्त किए जाते हैं ?	1. जी हां। किंतु 1982 से सभी अपर न्यायाधीश स्थायी बना दिए गए। एस० पी० गुप्ता वाले मामले और अन्य दृष्टांत को देखते हुए जिसमें अपर न्यायाधीशों की पदावधियां कुछ अवधि के लिए बढ़ानी चाही थीं, अनुच्छेद 224 का समर्थन नहीं करता किन्तु बकाया मामलों के लिए अनुच्छेद 224क के अधीन तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति का समर्थन करता है।
	2. पुष्टि में व्यपगत समय---क्या किसी को पुष्ट नहीं किया गया ?	2. पंजाब और हरियाणा में, शिवचन्द प्रसाद को 1960 में पुष्ट किया गया। हरबंस सिंह की अवधि को व्यपगत होने दिया गया किन्तु बाद में उन्हें पुष्ट कर दिया गया था।
VIII.	रिक्तियों को भरने में भारी विलंब :-	
	(i) कारण]	(i) रिक्तियों को भरने में विलंब 1982-86 में उच्च न्यायालयों में 14 रिक्तियां हुईं। अभी भी 7 रिक्तियां हैं और 4 नई रिक्तियां इस वर्ष होने वाली हैं। राज्य का राजनैतिक दबाव इन रिक्तियों को अपना संरक्षण का मामला बनाए हैं और उनकी पसंद का न्यायाधीश नियुक्त किए जाने का प्रयास किया जा रहा है जिसका मुख्य न्यायमूर्ति ने विरोध किया है और गतिरोध उत्पन्न हो गया है।
	(ii) किस प्रक्रम पर विलंब होता है ?	(ii) मुख्य मंत्री स्तर पर बार-बार स्मरण कराए जाने पर भी, सिफारिशों को 2 वर्ष तक पड़े रहने दिया गया। संघ सरकार के इस निदेश का भी मुख्य न्यायमूर्ति की सिफारिश एक मास के भीतर भेज दी जाए, पालन नहीं किया गया।
	(iii) क्या मुख्य न्यायमूर्ति पूर्व प्रत्याशित रिक्तियों को ध्यान में रख कर सिफारिश करते हैं ?	(iii) जी हां, 6 मास पहले किन्तु यह तत्परता उस समय निरर्थक हो जाती है जब मुख्य मंत्री का कार्यालय सहयोग नहीं देता।
	(iv) क्या सिफारिश की फाइल के संचलन का पता लगाया जाता है।	(iv) मुख्य न्यायमूर्ति, मुख्य मंत्री, राज्यपाल, विधि मंत्री भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, विधि मंत्रालय में पुनः प्रसंस्कृत, प्रधान मंत्री सचिवालय--- राष्ट्रपति तक यही प्रक्रिया आपत्तियों और प्रश्नों के जुड़ने पर दोहराई जाती है।

VI—जारी

मद्रास

1. जी नहीं

2. लंबित मामलों की संख्या और प्रति वर्ष प्रति न्यायाधीश सामान्य निपटारा।

(i) —

(ii) —

(iii) —

3. किसी विशेष अंतराल पर नहीं।

4. 1986

1. सभी न्यायाधीश इस समय स्थायी हैं।

2. सामान्यतः 2 वर्ष पश्चात्। सभी पुष्ट कर दिए गए हैं।

(i) और (ii) रिक्तियों को भरने में असाधारण विलंब। राज्य और केन्द्र में सभी स्तरों पर विलंब होता है। उ० न्या० को इस बात की कोई जानकारी नहीं होती कि प्रस्तावों पर कार्रवाई क्यों नहीं की जाती और प्रस्ताव किस आधार पर स्वीकार्य नहीं हैं।

(iii) कभी-कभी प्रस्ताव रिक्तियां होने की प्रत्याशा में किए जाते हैं।

(iv) –

क्रम सं०	प्रश्न	पटना
	(v) क्या मुख्य न्यायामूर्ति और मुख्य मंत्री के बीच वैयक्तिक मतभेद/विचार-विमर्श होता है ?	(v) जी हां। किंतु नाम की पहल सदैव मुख्य न्यायमूर्ति से होनी चाहिए क्योंकि वह अभ्यर्थी की योग्यता को बेहतर जानते हैं।
	(vi) क्या वह सहायक होता है ?	(vi) वैयक्तिक विचार-विमर्श की सीमित उपयोगिता है। वृत्ति तो अपने-अपने नामों पर सौदेबाजी की है जिसका कपटपूर्ण हानिकर प्रभाव है। गलत नियुक्तियों का न्यायालय के चरित्र और कार्य-करण पर अपहानिकर प्रभाव पड़ सकता है।
	(vii) क्या मुख्य मंत्री नामों की सिफारिश करते हैं ?	(vii) जी हां मुख्य मंत्री अनिवार्यतः नामों की सिफारिश करते हैं।
	(viii) यदि मुख्य न्या०, मुख्य मंत्री, भारत के मुख्य न्यायामूर्ति द्वारा अनुमोदित की गई कोई सिफारिश भारत संघ द्वारा नामंजूर कर दी गई है, यदि हां तो इसका उदाहरण दें ।	(viii) अनेक दृष्टांतों में, सुसंगत कागजातों के लिए नाम बताना संभव नहीं है। पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय में 1 पटना में, जी० सी० भरूजा को जब तीन वर्ष के लिए नियुक्त नहीं किया गया तब उसने अपना नाम वापस ले लिया ।
IX.	वर्ष 1980 से आज तक रिक्तियों के भरे जाने में विलंब--	--
X.	पद्धति को और अधिक लचीला, नम्य और परिणामोन्मुख बनाने के लिए हल ।	--

VI—जारी

मद्रास
(v) बहुत कम ।
(vi) अधिक नहीं ।
(vii) अभी तक मुख्य मंत्री से एक ही नाम प्राप्त हुआ है ।
(viii) यह जानकारी संघ सरकार की फाइलों से सरलता से उपलब्ध की जा सकती है ।
—
—

88,M/J(D)102MofLJ&CA—300—14-5-91—GIPS